ISSN : 2349-1876 (Print) / ISSN : 2454-1826 (Online)

Double Blind Peer-reviewed Referreed Research Journal

# INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE SOCIAL SCIENCE & HUMANITIES RESEARCH

Volume-V, Issue-II, April-June, 2018 (SPECIAL ISSUE)

Journal has been approved and notified by UGC Serial No. 48941 / PIF 5.46

## SPECIAL ISSUE

# मीडिया, साहित्य और राष्ट्रवाद

# MEDIA, LITERATURE AND NATIONALISM

## EDITOR

Dr. Harish Arora
PGDAV College (Eve.)
(University of Delhi)
Nehru Nagar, New Delhi-110065

A Quarterly Multidisciplinary Double-Blind Peer-reviewed International Referreed Research Journal

# IJISSHR

**(INTERNATNIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE SOCIAL SCIENCE & HUMANITIES RESEARCH)**

**Volume - V, Issue - II, April - June (2018)**

## SPECIAL THANKS

**Dr. Vinit Kumar, Director, CSIRS**

## EDITOR

**Dr. Harish Arora**
**P.G.D.A.V. College (Evening)**
**(University of Delhi)**
**Nehru Nagar, New Delhi-110065**

## Associate Editors

**Dr. Jaspal Singh, English**
**Dr. Jyotsna Prabhakar, English**

1. Editing of the Research Journal is processed without any remittance. The selection and publication is done after recommendation of subject expert referee.
2. Thoughts, language, vision and example in published research paper are entirely of author of research paper. It is not necessary that editor and editorial board are satisfied by the research paper. The responsibility of the matter of research paper is entirely of author.
3. In any condition if any National / International University denies to accept the research paper published in the Journal then it is not the responsibilities of Editor, publisher and Management.
4. Before re-use of published research paper in any manner, it is compulsory to take written acceptance from this issue Editor, unless it will assumed as disobedience of copyright rules.
5. All the legal undertaking related to this journal is subjected to be hearable at Lucknow jurisdiction only.

**copy@2018 all right reserved for Dr. Harish Arora (Editor)**

*सम्पादकीय*

# भारतीय राष्ट्रवाद और संस्कृति बोध

मानव जन्म से ही संवेदनशील प्राणी रहा है जिसके कारण मानव-मन ने समूह निर्माण की प्रवृत्ति को स्वीकार किया। सामूहिक रूप में रहने के कारण ही मानव का मानव के प्रति अनुरागात्मक सम्बन्ध स्थापित हुआ, बाद में जिससे सह-अस्तित्त्व की भावना का जन्म हुआ। ऐसा नहीं कि मानव की रागात्मक वृत्ति केवल मानव के लिए ही क्रियाशील थी प्रत्युत अपने जन्म स्थल और जिस स्थल पर वह महीनों रहता है उसके प्रति भी उसे एक विशेष लगाव हो जाता है। इसी कारण एक स्थान पर कई छोटे-छोटे समूहों का निर्माण हुआ। यही समूह आपस में मिलकर समाज का रूप बने। सामूहिकता की भावना का सहज विकास ही कालान्तर में राष्ट्र के रूप में प्रतिफलित हुआ। मूलतः भौगोलिक कारणों से एवं अपने अस्तित्त्व को बनाए रखने तथा विकास की साधना से प्रेरित होकर मानव ने अकेले रहने की बजाए समाज के घटक रूप में रहना पसन्द किया। यही समाज आगे चलकर एक दूसरे के निकट आकर पहले राज्य बने और फिर उनसे राष्ट्र।

लेकिन इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्र केवल 'लोगों का समूह' है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'राष्ट्र' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है "भूमि, भूमि पर बसने वाला 'जन' और जन की संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।" (**'राष्ट्र का स्वरूप', पृथ्वीपुत्र, पृष्ठ 91**) राष्ट्र के संदर्भ में श्री अरविन्द का मत है कि राष्ट्र "एक भूमि का टुकड़ा, शब्द अथवा मस्तिष्क की कल्पना मात्र नहीं है। वह एक महान शक्ति है जो कि करोड़ों शक्तियों के योग से बनती है जो राष्ट्र को बनाते हैं, जिस प्रकार भवानी महिषमर्दिनी एक विशाल शक्ति के संग्रह और एकता के रूप में लाखों देवताओं की शक्ति से उत्पन्न हुई थी। भारत में जिस शक्ति को हम भवानी भारती कहते हैं, वह तीस करोड़ जनता की शक्तियों की जीवित एकता है।" (**डॉ. रामनाथ शर्मा कृत राष्ट्रधर्म द्रष्टा श्री अरविन्द से साभार, पृष्ठ 107**) लेकिन बाबू गुलाबराय राष्ट्र को एक राजनीतिक इकाई के रूप में देखते हैं। इसीलिए वे राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नहीं मानते कि उसमें रहने वाले एक जातीय समुदाय के ही हों। दरअसल भू-भाग तो राष्ट्र का बाह्य पक्ष है। उस भू-भाग पर रहने वाले भूमि-वासियों के समूह, उनमें सहअस्तित्व की भावना तथा गौरव की अनुभूति से उनका अन्तःपक्ष व्यंजित होता है।

कई विद्वानों ने भिन्न-भिन्न भाषाओं, विचारों, लोक-व्यवहारों की विविधता को पृथक राष्ट्र मान लिया है। जबकि यह केवल जातिवाद और भाषावाद के नाम पर उग्र स्वभाव रखने वाले लोगों की सीमित मानसिकता का परिचायक है। राष्ट्र विभिन्न भूखण्डों पर बसे विभिन्न राज्यों के संधि पत्र पर हुए हस्ताक्षरों से नहीं बनता यह इतिहास की यात्रा में विकसित होती हुई जीवनध ारा है। अतः कहा जा सकता है कि किसी विशिष्ट भू-भाग के वे लोग जो किसी-न-किसी अथवा किन्हीं-न-किन्हीं जीवन-बिन्दुओं पर एकमत हों 'राष्ट्र' कहलाते हैं।

राष्ट्र के सम्बन्ध में विचार करने के उपरान्त यह सवाल उठता है कि विश्व के अन्य देशों में राष्ट्र शब्द के स्थान पर 'राज्य' की अवधारणा दिखाई देती है। विशेष रूप से पश्चिमी देशों में विभिन्न राज्यों के संयुक्त संगठन को एक विशेष रूप प्रदान किया जाता है जो राष्ट्र की अवधारणा से भिन्न राज्य के रूप में ही ख्यात हैं इसीलिए 'संयुक्त राज्य अमेरिका' विभिन्न राज्यों का समूह है न कि राष्ट्रों का। वास्तव में राज्य समाज की एक विशुद्ध राजनीतिक इकाई है। राज्य (State) और राष्ट्र (Nation) दोनों ही राजनीतिक रूप से एक होने पर भी दोनों में संगठन के आधार की दृष्टि से अंतर है। राज्य में एकता का सूत्र विशुद्ध राजनैतिक होता है अर्थात् शासन की केन्द्रीयता ही राज्य निर्माण के लिए पर्याप्त है किन्तु राष्ट्र में इसके अतिरिक्त जन-समूह की सामान्य-चेतना, लोक-परम्परा, रीति-रिवाज एवं रुचियों की समानता भी आवश्यक है। चूँकि राज्य समाज के छोटे-छोटे समूहों से मिलकर बनता है जिनकी आपसी सोच उनकी सहअस्तित्व की भावना के अनुरूप समान होती है लेकिन राष्ट्र विशाल भूखण्डों की राज्यीय सत्ता का केन्द्र है। जहाँ समूचे राज्यों की विभिन्न भाषाओं, परम्पराओं, लोक-व्यवहारों आदि के बावजूद उनमें समानता स्थापित करना उसका मुख्य आधार होता है। प्राचीन राज्यों की एकता भौतिकवादी दृष्टि पर टिकी रही इसीलिए उनमें राष्ट्रत्व के तत्व समाहित नहीं हो पाए लेकिन विकसित मानसिकताओं के कारण आधुनिक राज्यों में मनोवैज्ञानिक आधार पर सहअस्तित्व की भावना को स्वीकार किया। इसी सूक्ष्म आधार पर संयुक्त होकर कोई राज्य 'राष्ट्र' का स्वरूप धारण कर लेता है।

भारत में 'राज्य' और 'राष्ट्र' शब्द अन्य देशों की अपेक्षा अधिक विस्तृत और गहरे अर्थों में परिपोषित होते हैं। अन्य देश विभिन्न भाषाओं और विचारों के टकराव के कारण कभी 'राष्ट्र' नहीं बन सके। युगोस्लाविया, सोवियत संघ, चेकोस्लोवाकिया जबरन जोड़ कर राष्ट्र बनाने की कोशिश किए गए। बांग्लादेश को भी बलात् पाकिस्तान के साथ जोड़ दिया गया जबकि वह भाषा और संस्कृति के रूप में भिन्न था। मुरली मनोहर जोशी के अनुसार 'हमारे भारत में कई विचारधाराओं में अंतर है। ये विचारधाराएँ एक राज्य और कई राष्ट्र भारत में मानती हैं जबकि हम मानते हैं कि भारत एक राष्ट्र है और जिसमें कई राज्य है।..... इसमें कई जातियाँ, कई आक्रमणकारी और कई अक्खड़-फक्कड़ आये, इसने सबको आत्मसात कर लिया। वे इसी जीवनधारा में समाहित हो गए। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता को परिपुष्ट किया। उन्हें पृथक करके नहीं देखा जा सकता।' (**'सम्प्रदाय के आधार पर राष्ट्र नहीं बन सकता', धर्मयुग - 16-30 अप्रैल, 1993, पृष्ठ 21**) राष्ट्रवाद के इसी सिद्धांत को स्वीकार करते हुए रफीक जकरिया भी राष्ट्र और राज्य में अंतर स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'राष्ट्रवाद के सिद्धांत के आधार पर ब्रिटेन और अमरीका का अलग अस्तित्व है जबकि उनकी भाषा एक है, धर्म और संस्कृति भी एक है। इसी प्रकार फ्रैंच और इंग्लिश बोलने वाले कनाडा में एकत्रित हो गये, लेकिन धर्म एक होने के बावजूद भी अलग-अलग भाषाओं के होने के कारण वे आज तक एक राष्ट्र न बनकर एक राज्य ही बन पाए।' (**'आज का राष्ट्रवाद', धर्मयुग - 16-30 अप्रैल, 1993, पृष्ठ 14**) राज्य क्योंकि पूर्णत: एक राजनैतिक व्यवस्था है इसीलिए मानवीय आवश्यकताओं का मूर्त रूप होने के कारण यह भौतिक है। जबकि राष्ट्र का सम्बन्ध मनुष्य की अमूर्त भावनाओं से होता है, वह मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना को भी भावनात्मक आधार पर आवश्यक मानता है। इसलिए 'राष्ट्र' की प्रवृत्ति' आध्यात्मिक है। राष्ट्र धर्म की भांति आत्मगत है जबकि राज्य वस्तुगत। राष्ट्र मन की स्थिति के अनुरूप निश्चित होने के कारण मनोवैज्ञानिक है जबकि राज्य बौद्धिकता के धरातल पर सभ्यतापूर्ण जीवन दर्शन की एक अविच्छेद्य दशा।

सामान्य रूप से दैनिक प्रयोग की भाषा में **'राष्ट्र'** और **'देश'** का प्रयोग पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त होता है। वास्तव में राष्ट्र (Nation) और देश (Country) दोनों के अर्थों में अन्तर स्पष्ट करने वाले कई व्यावर्तक कारण हैं। 'देश' केवल धरती पर मिट्टी का एक भूखण्ड है जो केवल भौगोलिक सीमाएं दिखाता है। उसे केवल मानचित्र पर ही देखा जा सकता है। जब तक उस पर मानव जाति का निवास न हो तब तक वह केवल ठोस वस्तु है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। उस पर बसने वाली जनजाति का अस्तित्व भी तभी होता है जब उसकी अपनी संस्कृति होती है, अपनी सभ्यता और परम्परा होती है। देश भौगोलिक सीमाओं का प्रतीक है तो राष्ट्र इन सीमाओं में रहने वाले लोगों की एकसूत्रता और संस्कृति का। अत: भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध कोई भी भूभाग तब तक राष्ट्र का अधिकारी नहीं होता जब तक वहाँ के लोगों में सहअस्तित्व की भावना न हो। देश तो एक धर्मशाला की भांति है जहाँ लोग आते हैं, ठहरते हैं और चले जाते हैं जबकि राष्ट्र जन और जन-संस्कृति के प्रति निष्ठा रखने वालों का समूह है।

महाभारत की एक प्रसिद्ध कथा है, जब पाण्डव वनवास में थे तब कौरव वहाँ मृगया के लिए गए। यह मृगया तो बस एक बहाना था, इसके माध्यम से वे पाण्डवों को किसी-न-किसी भांति अपमानित करना चाहते थे। संयोग से वन में उनका गंधर्वों से झगड़ा हुआ और गंधर्वों ने अपनी शक्ति के बल पर कौरवों को बंदी बना लिया। जब इस बात का पता पाण्डवों को चला तब कौरवों की इस पराजय से युधिष्ठिर के अतिरिक्त सभी प्रसन्न हुए। लेकिन धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने अनुजों से कहा-

**'परै: परिभवेप्राप्ते वयं पंचाधिकं इतिम्।**
**परस्परविरोधेतु वयं पंचैव ते शतम्॥'**

अर्थात् 'आपसी झगड़े में हम भले ही सौ (कौरवों) के विरुद्ध) पाँच (पाण्डव) हों पर जब हम पर बाहरी (गंधर्वों का) आक्रमण होता है तब हमें मिलकर सौ अधिक पाँच यानि एक सौ पाँच को उनका सामना करना चाहिए' और उन्होंने भीम और अर्जुन को कौरवों की मुक्ति के लिए प्रेरित किया।

**'राष्ट्रीयता'** का सार इसी किस्से में है। कौरवों द्वारा पाण्डवों के विरुद्ध रचे गए षडयंत्र के बावजूद युधिष्ठिर ने राष्ट्रीय धर्म और भावात्मक सम्बन्धों के आधार पर उनकी रक्षा का निश्चय किया। भावात्मक होने के कारण ही 'राष्ट्रीयता' मानसिक तत्वों पर आधारित अमूर्त वस्तु है जिसे परिभाषित कर पाना सहज नहीं। क्लार्कसन ने इसी कठिनाई की ओर संकेत करते हुए कहा कि 'चिर परिचित होता हुआ भी राष्ट्रवाद, पाप की धारणा के समान, परिभाषा से परे है।' **(Nationalism & Internationalism, Page-45)** फिर भी अनेक विद्वानों ने 'राष्ट्रीयता' के सम्बन्ध में अपने-अपने मतों से उसके स्वरूप का निर्धारण किया है।

बालकृष्ण शर्मा नवीन इसे मानव हृदय से सम्बद्ध स्वीकारते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मानव-मन में असंख्य संवेगों, मनोविकारों और मनोभावों के अनुरूप ही मानव-हृदयों में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभाव विकसित और उन्नत होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय भावना भी मानवों के हृदयों में विकसित, आलोड़ित और उन्नत होती है। इसी तरह प्रसिद्ध इतिहास विशेषज्ञ डॉ. रघुवीर का मत है कि 'यह (राष्ट्रीयता) वह निराकार भावात्मक शक्ति है जिसके द्वारा राज्य की आंतरिक निरंकुश प्रभुता के विरुद्ध अधिकारों की रक्षा की जाती है जो बाह्य आक्रमण से रक्षा करने हेतु सुसंगठित समाज की स्थापना में सहायता करती

है इसलिए समूचे राष्ट्र और जन-साधारण के हित एवं उनके प्रति विशेष प्रेम, कर्तव्य तथा सहयोग की भावना ही राष्ट्रीयता की मूल आधार हो सकती है।' **( माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता, पृष्ठ 3 )**

वास्तव में भौगोलिक आकार को ही राष्ट्रीयता का आधार मानना एकांगी होगा। पारस्परिक सहयोग, सर्वतोन्मुखी उन्नति करने और संगठित रहने की उत्कट अभिलाषा, उस भू-भाग से प्रेम और उसके सभी जीवन बिन्दुओं पर गर्व की भावना से ही राष्ट्रीयता की भावना उभरती है। वर्तमान संदर्भों में तो राष्ट्रीयता धर्म बन गई है जिसके लिए लोग अपना सर्वस्व त्यागने और बलिदान होने में भी नहीं हिचकते। इसके निर्माण में जहाँ राष्ट्र के प्रति विवेकपूर्ण लगाव की निश्चित भूमिका होती है वहीं अतीत और वर्तमान के सुखद रूप की परिकल्पना भी इसका मुख्य आधार है। मुरली मनोहर जोशी इसे पश्चिम की राजनैतिक अवधारणा से अलग सांस्कृतिक अवधारणा स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'राष्ट्रीयता राज्य में नहीं संस्कृति में निहित है।.. राष्ट्रीयता जब संस्कृति पर आधारित होती है तब वह उच्च धरातल पर होती है और वह व्यक्तियों में एक सांस्कृतिक चेतना, जिसके जीवन मूल्य राजनैतिक चेतना से अधिक उदात्त होते हैं, उस पर आधारित होती है। यह सांस्कृतिक चेतना राष्ट्र को चिरंजीवी बनाती है।' **( 'सम्प्रदाय के आधार पर राष्ट्र नहीं बन सकता', धर्मयुग - 16-30 अप्रैल, 1993, पृष्ठ 21 )** इसीलिए भारत एक राष्ट्र के रूप में सबसे प्राचीन संस्कृति को संजोय रखने वाला राष्ट्र है। राष्ट्रीयता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वस्तु, विचार और भाव – तीनों की सत्ता समानान्तर रूप से सम्पृक्त हो। इसलिए राष्ट्रीयता एक आंतरिक प्रवृत्ति है। यह एक ऐसी चेतना है जिसमें विश्व को लेकर चलने की शक्ति है। इसके प्रस्थान बिन्दु में वैयक्तिकता और विस्तार में विश्व विद्यमान है। बिना व्यक्तिगत अनुराग और अनुभूति के समूचे राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जागृत करना असम्भव है। मानव का 'व्यष्टि' से 'समष्टि' की ओर उन्मुख होना ही राष्ट्रीयता की भावना को उद्भूत करता है। जब व्यक्ति राष्ट्र के हितार्थ समन्वय की भावना का स्वीकार तथा स्वार्थों और संकुचित सीमाओं का परित्याग करता है तभी सच्ची राष्ट्रीयता का जन्म होता है।

जिस तरह से राष्ट्र और देश में भिन्नता है उसी तरह से **राष्ट्रीयता** (Nationality) और **राष्ट्रिकता** (Nationism) में भी भेद है। जहाँ राष्ट्रीयता मानव-जीवन की एक विशिष्ट उपलब्धि है और मानव मन की संवेदनाओं से युक्त संस्कृति से पोषित एवं विकसित होती है वहीं राष्ट्रिकता राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं और उसके परिवेश का ज्ञान कराती है। 'राष्ट्रिकता' राष्ट्र के बाह्य स्वरूप का बोधक तत्व है और 'राष्ट्रीयता' उसके अन्तस की चेतना शक्ति।

राष्ट्रीयता का सर्वप्रमुख आधार देशभक्ति ही है। समाज की एकता और उसकी संस्कृति तथा देश के प्रति श्रद्धा और भावना का भाव किसी भी राष्ट्र के पार्श्व हैं लेकिन देशभक्ति उसका सर्वोपरि आधार है जिसके बिना राष्ट्रीयता की कल्पना सम्भव ही नहीं है। राष्ट्र के प्रति अनुराग और समर्पण भाव ही देशभक्ति है। राष्ट्र के कण-कण और उसके गौरवशाली प्रतीकों के प्रति अनुरागात्मक प्रवृत्ति ही देशभक्ति की भावना है। देश के प्रति इस प्रमाद प्रेम में भावना का स्थान सर्वोपरि होता है जबकि राष्ट्रवाद में भाव तत्व के होने पर भी बुद्धि तत्व की प्रधानता रहती है। दरअसल राष्ट्रीयता की प्रमुख चेतना देश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की होती है। यही चेतना भावनात्मक रूप से देशवासियों में देशभक्ति के रूप में उद्बुद्ध होकर अपने सर्वस्व त्याग और बलिदान की प्रेरणा जगाती है। अपने व्यक्तिगत अधिकारों और कर्तव्यों का वास्तविक बोध मनुष्य राष्ट्रीयता के अंतर्गत ही कर पाता है।

आज राष्ट्रीयता जब विश्वनजनीन होने को अग्रसर है ऐसे में जब-जब कोई व्यक्ति अपने राष्ट्र से इतर किसी अन्य देश में रहने लगता है तब भी अपने राष्ट्र के प्रति रागात्मक सम्बन्धों के कारण देशभक्ति की भावना सदैव उसके भीतर विद्यमान रहती है और अपने राष्ट्र के विकास के लिए वह कई आयोजनों में सहयोग भी करता है। जहाँ देश के गौरवगान, उसकी वंदना और उसके ऐतिहासिक स्वरूप पर अभिमान आदि देशभक्ति की भावना को उद्दीप्त करते हैं वहीं देश का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उत्थान राष्ट्रीयता का परिपोष करता है।

## राष्ट्रवाद और मीडिया

विगत् कुछ वर्षों में वैश्वीकरण की आंधी ने राष्ट्र और राष्ट्रीयता जैसे शब्दों को नए दृष्टिकोण से देखने के लिए बाध्य किया है। व्यक्ति की सांस्कृतिक प्रतिबद्धताओं ने अपने लिए नए दरवाजे खोल लिए हैं और विश्व की संस्कृतियों से परिचय पाकर उसने अपने सांस्कृतिक चरित्र को बदलने का प्रयास भी किया है। यह बदलाव यदि किसी राष्ट्र की संस्कृति और उसके औदात्य के लिए सकारात्मक हो तो कोई कठिनाई नहीं है लेकिन यदि किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना पर आघात होता है तो निश्चित रूप से उसकी अस्मिता पर पड़ने वाला प्रत्येक प्रहार उस राष्ट्र के नागरिकों के भीतर राष्ट्रीयता की चेतना को प्रखर बनाता है।

वैश्वीकरण ने मीडिया के माध्यम से ही विश्व को 'विश्व-ग्राम' के रूप में परिवर्तित कर दिया है। विश्व के अनेक देशों की संस्कृतियाँ अन्य देशों के साथ अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण निकट आ चुकी है। बाज़ार ने व्यक्ति को अपने देश की सीमाओं का त्याग करने के लिए बाध्य कर दिया। वह एक नए भौगोलिक परिवेश में अपने सांस्कृतिक अस्तित्व को बचाए रखने के प्रतिबद्ध दिखाई देने लगा। पश्चिमी देशों में जहाँ विकास की आंधी ने राष्ट्रवाद को हाशिए पर धकेल दिया और तकनीकी के कारण प्रगति की तीव्र गति ने नई चेतना के साथ समन्वय बिठाने का अवसर ही प्रदान नहीं किया। कई राष्ट्रों

की सामासिक संस्कृति का विकास पूर्णत: अवरुद्ध हो गया और समय की गति के साथ अपना सामंजस्य न बिठा पाने के कारण वे भी वैश्वीकरण का शिकार हो गए। लेकिन भारत की सामासिक संस्कृति सामाजिक जीवन के साथ-साथ वैश्विक परिस्थितियों के साथ भी सामंजस्य बिठा पाने में पूरी तरह समर्थ रही है। संस्कृति की पुरातनता का व्यामोह त्यागना सहज नहीं होता लेकिन भारतीयों ने अपनी पुरातन संस्कृति के सूत्रों को आधुनिक जीवन के अनुरूप ढालते हुए अपनी चेतना का विस्तार किया। भारतीयों का राष्ट्रवाद इसी सनातन संस्कृति के प्रगतिशील स्वरूप का राष्ट्रवाद है जो समय की धड़कनों के साथ अपने धड़कनों को मिला देता है। वह काल की परिस्थितियों के अनुरूप अपनी राष्ट्रीयता की अवधारणा स्वयं सुनिश्चित करता है। वह वैश्वीकरण की तेज आंधी में स्वयं को नहीं बहाता वरन् अपनी सांस्कृतिक पराकाष्ठा को बचाए रखते हुए प्रगति की ओर अग्रसर होता है।

जॉन प्लेमेनॉत्ज़ ने राष्ट्रवाद को 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' दो अलग-अलग रूपों में देखा। उनका मानना है कि पश्चिमी राष्ट्रवाद को आधुनिकता और ज्ञान के प्रसार तथा मध्य वर्ग के उदय आदि के आलोक में देखना चाहिए। जबकि पश्चिमी देशों (विशेषकर यूरोप) के अतिरिक्त विश्व के अन्य देशों में राष्ट्रवाद वहाँ की सभ्यता और संस्कृति में निरन्तर आए परिवर्तन के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसी तरह से होरेस बी डेविस भी दो तरह के राष्ट्रवाद की चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में पहला राष्ट्रवाद ज्ञानदीप्ति का राष्ट्रवाद, जहाँ तर्क को महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा दूसरा राष्ट्रवाद संस्कृति और परम्परा के आधार पर विकसित राष्ट्रवाद, जहाँ भावना को तर्क के मुकाबले अधिक प्रमुखता दी गई है। **(साभार, 'उन्नीसवी सदी का साहित्य : विचारधारा और राष्ट्रवाद', रूपा गुप्ता का शोध प्रबंध, पृष्ठ 17-18)** इस दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रवाद संस्कृति और परम्परा केन्द्रित है। भारतीय समाज अपनी परम्परा और संस्कृति के विभिन्न आदर्श प्रतिमानों की औदात्यता के साथ ही अपनी जीवन-यात्रा में अग्रसर रहते हैं। विगत् वर्षों में भारत के राष्ट्रवाद का स्वरूप प्रगतिशील ही रहा है लेकिन उस प्रगति में भी भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना कहीं भी अवरुद्ध नहीं हुई। बल्कि उस चेतना का राष्ट्रीय स्वरूप अब वैश्विक बनने की ओर अग्रसर है। जहाँ पश्चिमी राष्ट्रवाद का तकनीकी ज्ञान और विकास की तीव्रता के कारण क्षय हुआ वहीं भारतीय राष्ट्रवाद इस तकनीकी के माध्यम वैश्विक जगत में अपनी प्रतिष्ठा और विराटता का बोध कराने लगा। टेलीविज़न में पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों पर बने धारावाहिक तथा इतिहास की परतों से धूल हटाकर विराट चरित्रों पर बनी ऐतिहासिक फिल्में इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस तरह से देखा जाए तो तकनीकी ने विश्व की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सभी देशों की भौगोलिक दूरियों को मिटा दिया। ऐसे में एक देश की चेतना और संस्कृति का परिचय दूसरे देश की चेतना और संस्कृति से हुआ। ऐसे में छोटे देशों की लघु संस्कृतियों के लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के अर्थतंत्र ने गहरा प्रहार किया और वे संस्कृतियाँ अपने अस्तित्व को बचा पाने में असमर्थ रहीं। लेकिन भारत अपनी मजबूत अर्थव्यवस्था के साथ इन परिस्थितियों में भी दृढ़ता से खड़ा रहा। भारतीयों की अपने राष्ट्र के प्रति भावात्मक चेतना ने भारत की प्राचीन गौरवशाली परम्परा और प्रगति की धारा को समानान्तर आगे बढ़ाया और इक्कीसवीं सदी में भारत विश्व के समक्ष एक राष्ट्रवादी प्रतीक के रूप में दृढ़ता से स्थापित है।

**राष्ट्रवाद और साहित्य**

विगत

**– हरीश अरोड़ा**
**सम्पादक**
drharisharora@gmail.com
08800660646

संक्रांति, बैसाखी
14 अप्रैल, 2018

***मैं उस अखंडता का हिस्सा हूं, जिसे भारतीय राष्ट्रवाद कहा जाता है।***
***–मौलाना आजाद***

# ਤਤਕਰਾ


1. ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ 2
2. ਮੀਡਿਆ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ 7
3. ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ 11
4. ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ-ਇੱਕ ਸਰਵੇਖਣ 15
5. ਭਾਰਤੀ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ 19
6. ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਰੂਪਾਂਤਰਣ : ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 23
7. ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਹੁੰਦੇ ਨਾਰੀ ਬਿੰਬ: ਇਕ ਨਜ਼ਰੀਆ 27
8. ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਪੁਸਤਕ ਦੀ ਆਲੋਚਨਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ 32
9. ਮੀਡੀਆ: ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ 36
10. ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ 42
11. ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ : ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦ 45

# ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ

ਡਾ. ਅਕਾਲ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਕੌਰ[1]

ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਅਰਥਾਂ ਦਾ ਉਤਪਾਦਨ, ਸਾਂਭ ਸੰਭਾਲ ਅਤੇ ਸੰਚਾਰ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਪ੍ਰਬੰਧਾਂ ਦੇ ਸਮੂਹ ਨੂੰ ਸਭਿਆ-ਚਾਰ ਦਾ ਨਾਮ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕਿਉਂਕਿ ਸੰਚਾਰ ਦਾ ਕਾਰਜ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਨੇਪਰੇ ਚੜ੍ਹਦਾ ਹੈ, ਇਸ ਲਈ ਸੰਚਾਰ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਅਲੱਗ ਅਲੱਗ ਕਰਕੇ ਨਹੀਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਾਂਗ ਹੀ ਭਾਵੇਂ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਪੂੰਜੀ ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀ ਦਾ ਸੰਚਾਰ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਪ੍ਰਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਕ੍ਰਮਵਾਰ ਅਰਥਚਾਰਾ ਅਤੇ ਸਿਆਸਤ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਪੂੰਜੀ ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀ ਦੇ ਸੰਚਾਰ ਨੂੰ ਅਰਥਾਂ ਦੇ ਸੰਚਾਰ ਨਾਲੋਂ ਅਲੱਗ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਇਹਨਾਂ ਤਿੰਨਾਂ ਦਾ ਅੰਤਰ-ਸਬੰਧਤ ਅਮਲ ਹੀ ਸਮਾਜਾਂ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕਰਦਾ ਹੈ।[2] ਇਸ ਲਈ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਅਰਥਚਾਰੇ, ਸਿਆਸਤ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਉਸ ਸਮਾਜ ਦੇ ਸੰਚਾਰ ਪ੍ਰਬੰਧ/ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਅਧਿਐਨ ਅਤੇ ਵਿਸ਼-ਲੇਸ਼ਣ ਅਨਿਵਾਰੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।[3]

ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅੱਜ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਸੰਕਟ ਅਤੇ ਡੂੰਘੀ ਕਸ਼ਮਕਸ਼ ਵਿਚੋਂ ਗੁਜ਼ਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵਾਹੀ ਯੋਗ ਜ਼ਮੀਨ ਉਪਰ ਜਨਸੰਖਿਆ ਦਾ ਬੋਝ ਵਧਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਅਪਰੇਸ਼ਨਲ ਹੋਲਡਿੰਗ ਦਾ ਔਸਤ ਆਕਾਰ ਘਟ ਨਹੀਂ, ਵਧ ਰਿਹਾ ਹੈ।[4] ਇੱਕ ਪਾਸੇ ਇਸ ਦੀ ਖੇਤੀ ਪੈਦਾਵਾਰ ਵਿਚ ਲਗਾਤਾਰ ਵਾਧਾ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਦੂਸਰੇ ਪਾਸੇ ਕਿਰਸਾਣੀ ਆਤਮ-ਹੱਤਿਆਵਾਂ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਇੱਕ ਪਾਸੇ ਸਿਖਿਆ ਅਤੇ ਸਿਹਤ ਸਹੂਲਤਾਂ ਵਧ ਰਹੀਆਂ ਹਨ । ਦੂਸਰੇ ਪਾਸੇ ਨੌਜਵਾਨ ਵਰਗ ਨਸ਼ਿਆਂ ਅਤੇ ਜੁਰਮ ਵਿਚ ਡੁਬਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਇਕ ਪਾਸੇ ਖੁਸ਼ਹਾਲੀ ਦਿਖਾਈ ਦੇ ਰਹੀ ਹੈ ਤਾਂ ਦੂਸਰੇ ਪਾਸੇ ਜਨਸੰਖਿਆ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਹਿੱਸਾ ਇਰਰੈਲੇਵੈਂਟ ਵੀ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕੋਲ ਨਾ ਕੋਈ ਰੁਜ਼ਗਾਰ ਹੈ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦੇਣ ਲਈ ਸਿਹਤ ਅਤੇ ਸਿਖਿਆ ਸਹੂਲਤਾਂ। ਵਾਤਾਵਰਣ ਜ਼ਹਿਰਾਂ ਨਾਲ ਭਰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜ਼ਮਹੂਰੀ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਮਹੱਤਵ ਗੁਆ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਬੇਵਸੀ ਦਾ ਬੋਲਬਾਲਾ ਹੈ, ਪਰ ਸਿਆਣਿਆਂ ਨੂੰ ਕੋਈ ਹੱਲ ਨਜ਼ਰ ਨਹੀਂ ਆ ਰਿਹਾ।

ਵਾਇਰਲੈਸ ਮੀਡੀਆ, ਡਿਜੀਟਲ ਤਕਨਾਲੋਜੀ, ਇੰਟਰਨੈਟ, ਵੈੱਬ 2.0, ਸੀਮੈਂਟਿਕਸ ਅਤੇ ਵੰਨਸੁਵੰਨੀਆਂ ਮੀਡੀਆ ਨਿਰਮਾਣ/ ਖਪਤ ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੇ ਮਿਲਾਪ ਵਿਚੋਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਗਿਆਨ ਅਤੇ ਸੰਚਾਰ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਨੇ ਪਿਛਲੀ ਸਦੀ ਦੇ ਆਖਰੀ ਦਹਾਕੇ ਵਿਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਏ ਸਮਾਜਕ, ਆਰਥਕ, ਰਾਜਨੀਤਕ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਅਤੇ ਤਕਨੀਕੀ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਰਾਹੀਂ, ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਇੱਕ ਸਾਂਝੇ ਪਾਰਟੀਸੀਪੇਟਰੀ ਅਤੇ ਕੋਲੈਬਰੇਟਿਵ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਨੈਟਵਰਕ ਵਿਚ ਬੰਨ੍ਹ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨੇ ਭਾਵੇਂ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਪਰ ਜਿਸ ਕਦਰ ਇਹ ਫੋਰਡਿਸਟ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਨੂੰ ਉਤਰ-ਫੋਰਡਿਸਟ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਵਿਚ ਰੂਪਾਂਤ੍ਰਿਤ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ, ਉਸ ਨਾਲ ਕੇਵਲ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚਾ ਹੀ ਤਬਦੀਲ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ, ਸਗੋਂ ਉਸ ਢਾਂਚੇ ਨੂੰ ਨਿਯੰਤ੍ਰਿਤ ਕਰ ਰਹੀ ਰਾਜਨੀਤੀ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਵੀ ਬਦਲ ਗਈਆਂ ਹਨ।[5] ਸਪਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਬਦਲੇ ਹੋਏ ਸਮਾਜਕ, ਆਰਥਕ, ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮਹੌਲ ਅਤੇ ਇਸ ਤਬਦੀਲੀ ਨੂੰ ਊਰਜਿਤ ਕਰ ਰਹੀ ਨਵੀਂ ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨੂੰ ਸਮਝੇ ਬਗੈਰ ਪੰਜਾਬ ਜਾਂ ਫੇਰ ਕਿ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਸੰਕਟ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਖੇਤੀ ਸੈਕਟਰ ਵੀ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਉਤਪਾਦਨ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿਚੋਂ ਲੰਘ ਕੇ ਨਵ-ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਉਤਪਾਦਨ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰ ਗਿਆ ਹੈ। ਮੇਰੇ ਇਸ ਖੋਜ ਕਾਰਜ ਦਾ ਮਕਸਦ ਨਵ-ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਨੈਟਵਰਕ ਸੁਸਾਇਟੀ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦਾ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸੰਕਟ ਦੀ ਪਛਾਣ ਅਤੇ ਉਸਦੇ ਸਮਾਧਾਨ ਦੀ ਦਿਸ਼ਾ ਵਿਚ ਤੁਰਿਆ ਜਾ ਸਕੇ। ਆਪਣੇ ਇਸ ਖੋਜ ਪੱਤਰ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਭਾਗ ਵਿਚ ਮੈਂ ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆਂ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੇ ਜਾ ਰਹੇ ਨੈਟਵਰਕ ਸੁਸਾਇਟੀ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਰਾਹੀਂ ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ ਸਮਾਜ-ਆਰਥਕ-ਰਾਜਨੀਤਕ ਰੂਪਾਂਤ੍ਰਣ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਾਂਗੀ ਅਤੇ ਦੂਸਰੇ ਭਾਗ ਵਿਚ ਇਸ ਸਮਝ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾ ਕੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸੰਕਟ ਦਾ ਅਧਿਐਨ ਅਤੇ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਕਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ ਤਾਂ ਜੋ ਤੀਸਰੇ ਭਾਗ ਵਿਚ ਉਸ ਸੰਕਟ ਦੇ ਸਮਾਧਾਨ ਲਈ ਕੋਈ ਰੂਪ-ਰੇਖਾ ਤਿਆਰ ਕੀਤੀ ਜਾ ਸਕੇ।

ਉਤਰ-ਉਦਯੋਗਵਾਦ, ਉਤਰ-ਆਧੁਨਿਕਤਾਵਾਦ, ਉਤਰ-ਮਾਨਵਵਾਦ, ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਣ, ਨਵ-ਉਦਾਰਵਾਦ, ਆ-ਰਥਕ ਸੁਧਾਰ, ਆਊਟਸੋਰਸਿੰਗ, ਵਿਕੇਂਦਰੀਕਰਣ, ਪਾਰ-ਰਾਸ਼ਟਰੀਅਤਾ, ਬਹੁਵਾਦ ਆਦਿ ਤਮਾਮ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਇਸ ਨਵ-ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨਾਲ ਗਹਿਰੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਹੀ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ।[6] ਇਹ ਨੈਟਵਰਕ

ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨਵ-ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਕੇਵਲ ਸਥੂਲ ਆਧਾਰ ਹੀ ਨਹੀਂ, ਉਸਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਬੁਨਿਆਦ ਵੀ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਦਸ਼ਾ/ ਦਿਸ਼ਾ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਡਿਸਕੋਰਸ ਨੂੰ ਸਮਝਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਕੰਪਿਊਟਰ ਨੈਟਵਰਕ, ਡਿਜੀਟਲ ਤਕਨਾਲੋਜੀ, ਓਪਨ ਸੋਰਸ ਸੌਫਟਵੇਅਰ, ਯੂਜ਼ਰ ਜੈਨਰੇਟਿਡ ਕੌਨਟੈਂਟ, ਮੋਬਾਈਲ ਫੋਨ ਅਤੇ ਦੂਰ-ਸੰਚਾਰ ਨੈਟਵਰਕ ਦੇ ਵਿਸਤਾਰ ਨਾਲ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਨੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਉੱਪਰ ਨਿਰਭਰ ਬਣਾ ਲਿਆ ਹੈ। ਦਰਅਸਲ ਇੰਟਰਨੈਟ 1969 ਵਿਚ ਸਾਹਮਣੇ ਆਈ ਪੁਰ-ਾਣੀ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਹੈ। ਪਰ ਵੀਹ ਸਾਲ ਬਾਅਦ ਇਸ ਨੂੰ ਨਿਯੰਤ੍ਰਿਤ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਕਾਨੂੰਨਾਂ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲੀ, ਟਰਾਂਸਮਿਸ਼ਨ ਕਪੈਸਿਟੀ ਵਿਚ ਵਾਧੇ, ਸਸਤੇ ਪੀ ਸੀ ਦੀ ਆਮਦ ਅਤੇ ਯੂਜ਼ਰ-ਫਰੈਂਡਲੀ ਸਾਫਟਵੇਅਰ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਨਾਲ ਇਹ ਬੜੀ ਤੇਜ਼ੀ ਨਾਲ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਘਰਾਂ, ਦਫਤਰਾਂ, ਫੈਕਟਰੀਆਂ, ਸਕੂਲਾਂ ਅਤੇ ਜੇਬਾਂ ਵਿਚ ਪਹੁੰਚ ਗਿਆ।[7] ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਲੋਕਾਂ ਨੇ ਘੜੀਆਂ ਆਦਿ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਗਹਿਣਿਆਂ ਵਾਂਗ ਆਪਣੇ ਸਰੀਰ ਉਪਰ ਪਹਿਨਣਾ ਵੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਇਹ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਨਿੱਜੀ, ਵਿਵਸਾਇਕ, ਪੈਦਾਵਾਰੀ, ਖਪਤਕਾਰੀ, ਸਮਾਜਕ, ਆਰਥਕ, ਰਾਜਨੀਤਕ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ, ਧਾਰਮਕ, ਗਿਆਨਕਾਰੀ ਅਤੇ ਵਿਦਿਅਕ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ। ਨਤੀਜੇ ਵਜੋਂ ਅਜਿਹੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਅੱਜ ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ 40 ਪ੍ਰਤੀਸਤ ਤੋਂ ਵੀ ਵਧੇਰੇ ਲੋਕ ਇਸਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਵਿਕਸਤ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਤਾਂ ਅਜਿਹੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ 80 ਪ੍ਰਤੀਸ਼ਤ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚ ਗਈ ਹੈ। ਅੱਜ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਵੀ ਵੀਹ ਕਰੋੜ ਲੋਕ ਆਪਣੇ ਕੰਪਿਊਟਰਾਂ, ਲੈਪਟੌਪਾਂ ਅਤੇ ਮੋਬਾਈਲਾਂ ਰਾਹੀਂ ਇਸਦਾ ਉਪਯੋਗ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਮੋਬਾਈਲ ਫੋਨ ਜਿਸ ਤੇਜ਼ੀ ਨਾਲ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਸਾਂਝੇ ਵਰਲਡ ਵਾਈਡ ਵੈੱਬ ਵਿਚ ਬੰਨ੍ਹ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ ਕਿਸੇ ਕ੍ਰਿਸ਼ਮੇ ਤੋਂ ਘੱਟ ਨਹੀਂ।

ਦਸਤਾਵੇਜ਼ਾਂ ਦੀ ਸਾਂਭ ਸੰਭਾਲ ਅਤੇ ਤਬਾਦਲੇ ਲਈ ਸੰਚਾਰ ਨੈਟਵਰਕ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਵਿਕਸਤ ਹੋਇਆ ਵਰਲਡ ਵਾਇਡ ਵੈਬ, ਅੱਜ ਕੇਵਲ ਟੈਕਸਟ, ਆਡੀਓ, ਵੀਡੀਓ, ਸਾਫਟਵੇਅਰ ਆਦਿ ਹਰ ਵਸਤ ਜਿਸ ਨੂੰ ਵੀ ਡਿਜੀਟਾਈਜ਼ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕੇ, ਦੀ ਪੋਸਟਿੰਗ ਅਤੇ ਐਕਸਚੇਂਜ ਦਾ ਹੀ ਕੰਮ ਨਹੀਂ ਕਰ ਰਿਹਾ, ਸਗੋਂ ਮੀਡੀਆ ਨਿਰਮਾਣ ਅਤੇ ਐਕਸੈਸ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਵੈਬ 2.0 ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰੋਡਿਊਸਰ ਅਤੇ ਖਪਤਕਾਰ ਵਿਚਲਾ ਪਾੜਾ ਮੇਟ ਕੇ ਗਿਆਨ, ਵਿਗਿਆਨ, ਤਕਨਾਲੋਜੀ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਦੀ ਪੈਦਾਵਾਰ ਵਿਚ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਉਦਾਸੀਨ ਖਪਤਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਬਰਾਬਰ ਦੇ ਭਾਈਵਾਲ ਬਣਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਹ ਕੰਮ ਓਪਨ ਸੋਰਸ ਸਾਫਟਵੇਅਰ ਅਤੇ ਯੂਜ਼ਰ ਜੈਨਰੇਟਿਡ ਕੌਨਟੈਂਟ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਕੇ ਅਨੇਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਅਤੇ ਸੇਵਾਵਾਂ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਵਿਚ ਖਪਤਕਾਰਾਂ ਦੀ ਚੇਤੰਨ ਸ਼ਮੂਲੀਅਤ ਤੱਕ ਫੈਲ ਗਿਆ ਹੈ।[8]

ਵੈੱਬ 2.0 ਨੂੰ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਵਿਚ ਵਾਪਰਨ ਵਾਲੀ ਸਿਧਾਂਤਕ ਸ਼ਿਫਟ ਵਜੋਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵੈੱਬ 2.0 ਦੀ ਆਮਦ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਉਪਰ ਉਪਲਬਧ ਡਿਜੀਟਲ ਵਸਤਾਂ/ ਸੇਵਾਵਾਂ ਇਹਨਾਂ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਵੈੱਬਸਾਈਟਾਂ ਤੋਂ ਇਸਦੇ ਖਪਤਕਾਰਾਂ ਵੱਲ ਇਕ ਤਰਫਾ ਵਹਿੰਦੀਆਂ ਸਨ। ਇਸ ਇਕ ਤਰਫਾ ਵਹਾਅ ਕਾਰਨ ਹੀ ਇਹਨਾਂ ਵੈੱਬਸਾਈਟਾਂ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਧਿਰਾਂ ਇਸਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਪਬਲਿਕ ਉਪਰ ਆਪਣਾ ਏਕਾਧਿਕਾਰ ਸਥਾਪਤ ਕਰਦੀਆਂ ਸਨ। ਪਬਲਿਕ ਕੋਲ ਇਸ ਜਾਣਕਾਰੀ ਨੂੰ ਸੋਧਣ ਜਾਂ ਰੂਪਾਂਤ੍ਰਿਤ ਕਰਕੇ ਵਰਤੋਂ ਵਿਚ ਲਿਆਉਣ ਦੀਆਂ ਨਾ ਕੋਈ ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਸਨ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਅਧਿਕਾਰ। ਵੈੱਬ 2.0 ਇਸ ਏਕਾਧਿਕਾਰ ਨੂੰ ਸਮਾਪਤ ਕਰਕੇ, ਅਜਿਹੇ ਡਿਜੀਟਲ ਡਿਸਕੋਰਸ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਜਿੱਥੇ ਪ੍ਰੋਡਿਊਸਰ ਅਤੇ ਖਪਤਕਾਰ ਵਿ-ਚਲਾ ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਪਾੜਾ ਮਿਟ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਅਮਲ ਵਿਚ ਖਪਤਕਾਰਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਸ਼ਮੂਲੀਅਤ ਅਤੇ ਸਹਿਕਾਰਤਾ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਦੀ ਵਰਟੀਕਲ ਅਤੇ ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਆਰਗੇਨੀਜ਼ੇਸ਼ਨ ਨੂੰ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਅਤੇ ਨੈਟਵਰਕਡ ਆਰਗੇਨਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।

ਓਪਨ ਸੋਰਸ ਸਾਫਟਵੇਅਰਾਂ ਦੇ ਕਾਪੀਰਾਈਟ ਹੋਲਡਰ ਇਹਨਾਂ ਸਾਫਟਵੇਅਰਾਂ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਕੇਵਲ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਮੁਫਤ ਵਰਤੋਂ ਕਰਨ ਦਾ ਹੀ ਨਹੀਂ, ਸਗੋਂ, ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਨਿਰਮਾਣਕਾਰੀ ਨੂੰ ਸਮਝ ਕੇ ਤਬ-ਦੀਲ ਕਰਨ ਦਾ ਵੀ ਅਧਿਕਾਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਸੋਰਸ ਕੋਡ ਖੁੱਲੇਆਮ ਸਾਂਝੇ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਜੋ ਇਹਨਾਂ ਸਾਫਟਵੇਅਰਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਬਿਹਤਰ ਬਨਾਉਣ ਲਈ ਵੱਧ ਤੋਂ ਵੱਧ ਸਾਫਟਵੇਅਰ ਵਰਕਰਾਂ/ ਮਾਹਿਰਾਂ ਦੀ ਸ਼ਮੂਲੀਅਤ ਨੂੰ ਯਕੀਨੀ ਬਣਾਇਆ ਜਾ ਸਕੇ। ਅੱਜ ਲੱਖਾਂ ਕਰੋੜਾਂ ਸਰਵਰ, ਡੈਸਕਟੌਪ, ਸਮਾਰਟ ਫੋਨ (ਗੂਗਲ ਐਂਡਰਾਇਡ) ਅਤੇ ਹੋਰ ਅਨੇਕਾਂ ਜੰਤਰ ਸਾਂਝੇ ਸਹਿਕਾਰੀ ਯਤਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਵਿਕਸਤ ਕੀਤੇ ਲੀਨਿਕਸ ਅਤੇ ਬੀ ਐਸ ਡੀ ਵਰਗੇ ਓਪਨ ਸੋਰਸ ਓਪਰੇਟਿੰਗ ਸਿਸਟਮਾਂ ਦਾ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਕੇ ਸਟੈਂਡਿਸ਼ ਗਰੁਪ ਦੀ 2008 ਦੀ ਇਕ ਰਿਪੋਰਟ ਅਨੁਸਾਰ ਲਗਭਗ 60 ਅਰਬ ਡਾਲਰ ਦੀ ਸਲਾਨਾ ਬੱਚਤ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਸਫਲਤਾ ਨੂੰ ਹਰ ਪਾਸੇ ਰੈਪਲੀਕੇਟ ਕੀਤਾ ਜਾਣ ਲੱਗਾ ਜਿਸ ਨਾਲ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਦੀ ਵਰਟੀਕਲ ਅਤੇ ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਆਰਗੇਨੀਜ਼ੇਸ਼ਨ ਦੇ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਅਤੇ

ਨੈਟਵਰਕਡ ਆਰਗੇਨਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਵਿਚ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਮਾਲਕ ਅਤੇ ਕਾਮੇ ਵਿਚਲੇ ਸ਼ਕਤੀ ਸਬੰਧ (ਪਾਵਰ ਰੀਲੇਸ਼ਨਜ਼) ਵੀ ਬਦਲਣ ਲੱਗੇ। ਤਕਨਾਲੋਜੀ, ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਜਮਾਤ ਦੇ ਤੀਹਰੇ ਗਠਜੋੜ ਨੂੰ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਕਰਨ ਲੱਗ ਪਈ। ਦੇਖਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਹਾਈਰਾਰਕੀ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਖਤਮ ਨਹੀਂ ਹੋਈ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕਤਾ ਨਾਲ ਜੁੜੀ ਮੈਰੀਟੋਕਰੇਸੀ ਅਤੇ ਟੈਕਨੋਕਰੇਸੀ ਨਵੀਂ ਪ੍ਰਗਟ ਹੋ ਰਹੀ ਸਮਾਜਕ ਦਰਜਾਬੰਦੀ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣ ਗਈ ਹੈ।

ਓਪਨ ਸੋਰਸ ਸਾਫਟਵੇਅਰ ਅਤੇ ਯੂਜ਼ਰ ਜੈਨਰੇਟਿਡ ਕੌਨਟੈਂਟ ਤੇ ਕੰਮ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਗਿਆਨ ਕਾਮਿਆਂ/ ਮਾਹਿਰਾਂ ਲਈ ਘਰ ਅਤੇ ਦਫਤਰ ਦੀ ਸਪੇਸ, ਕੰਮ ਅਤੇ ਆਰਾਮ/ ਮਨੋਰੰਜਨ ਦੇ ਸਮੇਂ ਜਾਂ ਪਬਲਿਕ ਅਤੇ ਪ੍ਰਾਈਵੇਟ ਜੀਵਨ ਸ਼ੈਲੀਆਂ ਦੇ ਭੇਦ ਵੀ ਮਿਟ ਰਹੇ ਹਨ। ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਨਿੱਜੀ ਚਾਹਤਾਂ, ਸੋਹਜ ਸੁਆਦ, ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਅਤੇ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਬੋਰੀਅਤ ਨਾਲ ਭਰੇ ਕੰਮ ਨੂੰ ਇਰੋਟੇਸਾਈਜ਼ ਕਰ ਕੇ ਐਲੀਨੇਸ਼ਨ ਦੀ ਥਾਂ ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ, ਆਜ਼ਾਦੀ ਅਤੇ ਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਨਾਲ ਜੋੜ ਦਿੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਹੁਣ ਉਹ ਚੌਵੀ ਘੰਟੇ ਆਪਣੀਆਂ ਸਮੁਚੀਆਂ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਸਹਿਤ ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਹਾਜ਼ਰ ਹੈ। ਬਿਲ ਗੇਟਸ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਦੀ ਇਸ ਹਾਈਰਾਰਕੀ ਰਹਿਤ ਓਪਨ, ਫਲੈਕਸੀਬਲ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ, ਡੀਸੈਂਟਰਡ, ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਅਤੇ ਨੈਟਵਰਕਡ ਆਰਗੇਨਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਦੇ ਨਵੇਂ ਡਿਸਕੋਰਸ ਦਾ ਮੈਟਾਫਰ ਹੈ।

ਨੈਟਵਰਕ ਡਿਸਕੋਰਸ ਵਿਚ ਵਿਅੱਕਤੀ ਪੂਰਵ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਜਮਾਤਾਂ ਵਿਚ ਬੱਝਣ ਦੀ ਥਾਂ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਨੈਟਵਰਕ ਦੀਆਂ ਸੁਤੰਤਰ ਨੋਡਜ਼ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਕੰਸਟਰਕਟ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਜਿਥੇ ਉਹ ਨੈਟਵਰਕ ਦੀਆਂ ਹੋਰਨਾਂ ਨੋਡਜ਼ ਨਾਲ ਆਪਸੀ ਸਹਿਯੋਗ ਦੇ ਆਰਜ਼ੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆ ਵਿਚੋਂ ਆਪਣੀ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਪਹਿਚਾਣ ਬਣਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਹੁਣ ਇਹ ਪਹਿਲਾਂ ਵਾਂਗ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿਚੋਂ ਸਮਾਜਕ ਜਮਾਤਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਨਹੀਂ, ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਵਸੀਲਿਆਂ (ਤਕਨਾਲੋਜੀ) ਵਿਚੋਂ ਆਪਣੀ ਤਕਨੀਕੀ ਯੋਗਤਾ/ ਸਮਰੱਥਾ ਰਾਹੀਂ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਕਾਮਿਆਂ/ ਮਾਹਿਰਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਹਸਤੀ ਸਥਾਪਤ ਕਰਦੇ ਹਨ।

ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਆਰਕੀਟੈਕਚਰ ਅਤੇ ਸੈਂਟਰਲਾਈਜ਼ਡ ਕੰਟਰੋਲ ਸਿਸਟਮ ਫੋਰਡਿਸਟ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਦੇ ਪ੍ਰਮੁਖ ਲੱਛਣ ਸਨ। ਪਰ ਪਿਛਲੇ ਤੀਹ ਸਾਲਾਂ ਤੋਂ ਇਸ ਫੋਰਡਿਸਟ ਵਿਵਸਥਾ ਵਿਚ ਨਾਟਕੀ ਤਬਦੀਲੀ ਦੇਖੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਕਾਰਪੋਰੇਸ਼ਨਾਂ ਦੇ ਅੰਦਰੂਨੀ ਢਾਂਚੇ ਅੰਦਰ ਵਿਭਿੰਨ ਵਿਭਾਗਾਂ/ ਉਦਯੋਗਾਂ/ ਕੰਮਾਂ ਦੀ ਵਰਟੀਕਲ ਬਿਊਰੋਕਰੇਸੀ ਉਹਨਾਂ ਹੀ ਵਿਭਾਗਾਂ/ ਉਦਯੋਗਾਂ/ ਕੰਮਾਂ ਦੀ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਨੈਟਵਰਕਿੰਗ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪੁਨਰ-ਨਿਰਮਿਤ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਸੋਚਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਕਿ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਅਮਲਾਂ ਦੇ ਵਿਕੇਂਦਰੀਕਰਣ ਅਤੇ ਪ੍ਰਬੰਧਕੀ ਢਾਂਚੇ ਦੀ ਹਾਈਰਾਰਕੀਕਲ ਸੰਰਚਨਾਕਾਰੀ ਤੋਂ ਮੁਕਤੀ ਰਾਹੀਂ ਹਾਰੀਜ਼ਾਂਟਲ ਨੈਟਵਰਕਿੰਗ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਵਿਕਸਿਤ ਹੋ ਰਹੀ ਪੈਦਾਵਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਦੀ ਨਵੀਂ ਉਤਰ-ਫੋਰਡਿਸਟ ਵਿਵਸਥਾ ਹੀ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਨੂੰ ਇਸਦੇ ਮੌਜੂਦਾ ਸੰਕਟ ਵਿਚੋਂ ਬਾਹਰ ਕੱਢ ਕੇ ਪੂੰਜੀ ਉਤਪਾਦਕਤਾ ਦੇ ਨਵੇਂ ਮਾਰਗ ਪੈਦਾ ਕਰੇਗੀ।[9]

ਸਨਅਤੀ ਕਾਮੇ ਨੂੰ ਉਦਾਸੀਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਤੋਂ ਆਜ਼ਾਦ ਅਤੇ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਐਂਟਰਪਨਿਉਰ ਬਣਾਇਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਕੇਵਲ ਐਨਸਿਲਰੀ ਯੂਨਿਟਾਂ ਅਤੇ ਆਊਟਸੋਰਸਿੰਗ ਰਾਹੀ ਹੀ ਨਹੀਂ, ਠੇਕੇਦਾਰੀ ਦੀ ਪ੍ਰਥਾ ਰਾਹੀਂ ਹਰ ਕਾਮੇ ਦੇ ਕੰਮ ਦਾ ਨਿੱਜੀਕਰਣ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਕਾਮੇਂ, ਕਾਮਿਆਂ ਦੀਆਂ ਟੀਮਾਂ ਅਤੇ ਐਨਸਿਲਰੀ ਯੂਨਿਟ ਉਸ ਸਨਅਤ/ ਕੰਪਨੀ ਦੀ ਅੰਦਰੂਨੀ ਮੰਡੀ ਵਿਚ ਕੰਪੀਟ ਕਰ ਕੇ ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਾਦਕਤਾ ਵਧਾ ਸਕਣ। ਹਰੇ ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਖੇਤੀ ਮਾਡਲ ਵੀ ਇਹਨਾਂ ਲੀਹਾਂ ਉਪਰ ਹੀ ਉਸਰਿਆ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਖੇਤੀ ਦਾ ਸਮੁੱਚਾ ਬਿਜ਼ਨਸ ਐਗਰੋਕੈਮੀਕਲ, ਸੀਡ, ਪਰੋਸੈਸਿੰਗ ਅਤੇ ਰੀਟੇਲਿੰਗ ਕਾਰਪੋਰੇਸ਼ਨਾਂ ਦੇ ਕਬਜ਼ੇ ਹੇਠ ਹੈ। ਕਿਸਾਨਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਲਗਭਗ ਇਹਨਾ ਕਾਰਪੋਰੇਸ਼ਨਾਂ ਦੇ ਮੁਜਾਰਿਆਂ ਵਾਲੀ ਹੈ। ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਕਾਰਪੋਰੇਸ਼ਨਾਂ ਨੇ ਕਿਸਾਨ ਨੂੰ ਮਾਲਕ ਬਣਾ ਰੱਖਿਆ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਮੌਸਮ ਦੀਆਂ ਕਰੋਪੀਆਂ ਅਤੇ ਖੇਤੀ ਉਪਜ ਦੀ ਚੰਚਲ ਮੰਡੀ ਦੀਆਂ ਪਰੇਸ਼ਾਨੀਆਂ ਤੋਂ ਬਚਿਆ ਜਾ ਸਕੇ।[10]

ਜਦੋਂ ਕਾਮੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਆਜ਼ਾਦ ਅਤੇ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਐਂਟਰਪਨਿਉਰ ਸਮਝਣ ਲਗਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਉਹਨਾ ਦੀ ਕਿਰਤ ਦੀ ਉਤਪਾਦਕਤਾ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਉਹਨਾ ਦਾ ਸਮਾਜਕ ਰੁਤਬਾ ਵੀ ਤਬਦੀਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਚੰਚਲ ਜਮਾਤ ਦਾ ਨਾਮ ਦਿੱਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਹਨਾਂ ਆਜ਼ਾਦ ਅਤੇ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਕਾਮਿਆਂ ਦੀ ਐਲੀਨੇਸ਼ਨ ਤਾਂ ਘਟਦੀ ਹੈ, ਪਰ ਰਿਸਕ ਵਧ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕਿਰਤ ਦੇ ਨਿੱਜੀਕਰਣ ਨਾਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਜੌਬ ਸਕਿਉਰਟੀ ਵੀ ਬੁਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਕੰਪਨੀ ਦਾ ਸਾਰਾ ਰਿਸਕ/ ਬੋਝ ਕਾਮਿਆਂ ਦੇ ਸਿਰ ਆ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਆਜ਼ਾਦ ਅਤੇ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਸਮਝਣ ਵਾਲੇ ਕਾਮਿਆ ਦੀ ਕਿਰਤ ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਵਧੇਰੇ ਗੁਲਾਮ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਪੂੰਜੀ ਦਾ ਉਸ ਦੀ ਕਿਰਤ ਉਪਰ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਮੁੱਚੀ ਜੀਵਨਧਾਰਾ ਉਪਰ ਕੰਟਰੋਲ ਵਧ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਉਸ ਨੂੰ ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਸੰਪੂਰਨ ਗੁਲਾਮੀ ਵੱਲ ਲਿਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਹੈ ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦਾ ਡੈਮੋਕਰੈਟਿਕ, ਪਾਰਟੀਸੀਪੇਟਰੀ, ਸੈਲਫ ਰੈਗੂਲੇਟਿੰਗ, ਕੋ-ਲੈਬਰੇਟਿਵ, ਡੀਸੈਂਟਰਡ, ਓਪਨ ਸੋਰਸ, ਯੂਜ਼ਰ ਜੈਨਰੇਟਿਡ ਫਲੈਕਸੀਬਲ ਡਿਸਕੋਰਸ ਜਿਸ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦਾ ਨਵਾਂ ਢਾਂਚਾ ਉਸਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਪੂੰਜੀ ਕਿਰਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੰਪੂਰਨ ਮਨੁਖੀ ਸਮਰੱਥਾ ਅਤੇ ਸੰਭਾਵਨਾ

ਨੂੰ ਨਿਯੰਤ੍ਰਿਤ ਕਰਨ ਦੀ ਆਸ ਲਾਈ ਬੈਠੀ ਹੈ।

ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਫੋਰਡਿਜ਼ਮ ਤੋਂ ਪੋਸਟ-ਫੋਰਡਿਜ਼ਮ ਵਿਚ ਰੂਪਾਂਤ੍ਰਣ ਨਾਲ ਪੂੰਜੀ, ਰਾਜ ਸੱਤਾ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਵਿਚਲੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅੰਦਰ ਆਈ ਤਬਦੀਲੀ ਨੇ ਸਭ ਕੁਝ ਬਦਲ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਫੋਰਡਿਸਟ ਸੁਸਾਇਟੀ ਵਿਚ ਪੂੰਜੀ (ਸ਼ੇਰ) ਅਤੇ ਕਿਰਤ ( ਬੱਕਰੀ) ਸਟੇਟ ਦੇ ਸਖਤ ਰੈਗੂਲੇਸ਼ਨ (ਘਾਟ) ਉਪਰ ਹੀ ਪਾਣੀ ਪੀਂਦੇ ਸਨ। ਪੂੰਜੀ ਦੁਆਰਾ ਰੁਜ਼ਗਾਰ, ਉ-ਜਰਤਾਂ ਵਿਚ ਵਾਧੇ ਅਤੇ ਜੌਬ ਸਕਿਉਰਟੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਕਿਰਤ ਨੂੰ ਦਿੱਤੀਆਂ ਜਾਣ ਵਾਲੀਆਂ ਸਹੂਲਤਾਂ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੀ ਸਮਾਜਕ ਤਬਦੀਲੀ ਦੀ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਮੰਗ ਨੂੰ ਦਬਾ ਕੇ ਪੂੰਜੀ ਨੂੰ ਆਪਣੀਆਂ ਪੈਦਾਵਾਰ ਅਤੇ ਖਪਤ ਦੀਆਂ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਨ ਦਾ ਕੌਨਟਰੈਕਟ ਰਾਜ ਸੱਤਾ ਦੇ ਰੈਗੂਲੇਸ਼ਨ ਅਧੀਨ ਹੀ ਮੇਨਟੇਨ ਹੋ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਇੰਟਰਵੈਂਨਸ਼ਨਿਸਟ, ਕੇਂਨਜ਼ੀਅਨ, ਵੈਲਫੇਅਰ ਸਟੇਟ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੋਨਾ ਧਿਰਾਂ ਤੋਂ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਕੇ ਸਟੇਟ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਨੂੰ ਅੰਦਰੂਨੀ ਅਤੇ ਬਾਹਰੀ ਸੰਕਟ ਤੋਂ ਬਚਾਉਂਦੀ ਰਹੀ। ਇਸ ਵਿਵਸਥਾ ਨੂੰ ਵਧੇਰੇ ਕਰਕੇ ਸੋਸ਼ਲ ਡੈਮੋਕਰੇਸੀ ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਜਾਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਸਮਕਾਲੀ ਪੋਸਟ-ਫੋਰਡਿਸਟ ਸੁਸਾਇਟੀ ਵਿਚ ਸਟੇਟ ਦਾ ਰੋਲ ਘਟਣ ਕਾਰਨ ਪੂੰਜੀ, ਰਾਜ ਸੱਤਾ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਵਿਚਲਾ ਕੌਨਟਰੈਟ ਤਿਕੜ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਣ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਪੂੰਜੀ ਵਧੇਰੇ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਹੁੰਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਪੂੰਜੀ, ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਦੇ ਪਾਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਵਹਾਅ ਵਿਚ ਤੇਜ਼ੀ ਆਉਣ ਕਾਰਨ ਪੂੰਜੀ ਸੈਲਫਰੈਗੂਲੇਸ਼ਨ (ਸਵੈ-ਅਨੁਸ਼ਾਸਨ) ਦੇ ਰਸਤੇ ਪੈ ਗਈ ਹੈ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਦੇ ਕਿਰਦਾਰ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲੀ ਆਉਣ ਬਾਅਦ ਇਸਦਾ ਸਿਆਸੀ, ਸੰਸਥਾਗਤ ਅਤੇ ਸਮਾਜ-ਵਿਗਿਆਨੀ ਮਹੱਤਵ ਘਟਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਕੁਲੈਕਟਿਵ ਬਾਰਗੇਨਿੰਗ ਦੀ ਥਾ ਵਿਅੱਕਤੀਗਤ ਕੌਨਟਰੈਕਟਾਂ ਨੇ ਇਸਦੀ ਜਮਾਤੀ ਪਹਿਚਾਣ ਖਤਮ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਇਹ ਸਮਕਾਲੀ/ ਨਵੀਂ ਵਿਵਸਥਾ ਨਵ-ਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਪਹਿਚਾਣੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।[11] ਸੋਸ਼ਲ ਡੈਮੋਕਰੇਸੀ ਨੂੰ ਨਵ-ਉਦਾਰਵਾਦ ਵਿਚ ਰੂਪਾਂਤਰਿਤ ਕਰਨ ਬਾਅਦ ਡਿਜੀਟਲ ਮੀਡੀਆ ਨੈਟਵਰਕ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦਾ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਡਿਸਕੋਰਸ ਹੀ ਹੁਣ ਇਸ ਨਵੀਂ ਵਿਵਸਥਾ ਨੂੰ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕਤਾ ਬਖਸ਼ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ।

ਇਸ ਤਬਦੀਲੀ ਨੂੰ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਸਪਿਰਟ ਵਿਚ ਆ ਰਹੀ ਤਬਦੀਲੀ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਫੋਰਡਿਸਟ ਦੌਰ ਵਿਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਸੋਸ਼ਲ ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ ਦੇ ਪ੍ਰਾਜੈਕਟ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕਤਾ ਹਾਸਲ ਕਰਦਾ ਸੀ, ਜਦੋਂ ਕਿ ਹੁਣ ਪੋਸਟ-ਫੋਰਡਿਸਟ ਦੌਰ ਵਿਚ ਇਸਨੂੰ ਆਪਣੀ ਇਹ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕਤਾ ਇਨਡਿਵਿਯੂਅਲ ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ ਦੇ ਪ੍ਰਾਜੈਕਟ ਵਿਚੋਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ ਦੇ ਦੋਨੋ ਪ੍ਰਾਜੈਕਟਾਂ ਵਿਚ ਬੁਨਿਆਦੀ ਅੰਤਰ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਜਿਥੇ ਸੋਸ਼ਲ ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ ਦਾ ਪ੍ਰਾਜੈਕਟ ਸਮਾਜਕ ਸ਼ੋਸ਼ਣ/ ਲੁਟ ਖਸੁਟ ਦੀ ਨਵਿਰਤੀ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ, ਉਥੇ ਇਨਡਿਵਿਯੂਅਲ ਈਮੈਨਸੀਪੇਸ਼ਨ ਦਾ ਲਿਬਰਲ ਪ੍ਰਾਜੈਕਟ ਨਿੱਜੀ ਉਪਰਾਮਤਾ ਦੇ ਖਾਤਮੇ ਰਾਹੀਂ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਆਜ਼ਾਦੀ ਅਤੇ ਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।[12] ਇਸੇ ਲਈ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦਾ ਸੋਸ਼ਲ ਕਰਟੀਕ ਜਮਾਤੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣ, ਅਸੁਰੱਖਿਅਤਾ, ਕਾਣੀ ਵੰਡ, ਦੀਨਤਾ, ਗਰੀਬੀ ਅਤੇ ਨਾਬਰਾਬਰੀ ਦੇ ਖਾਤਮੇ ਲਈ ਪ੍ਰਤੀਬੱਧ ਹੈ ਜਦੋਂ ਕਿ ਲਿਬਰਲ ਕਰਟੀਕ ਵਿਅਕਤੀ ਦੀ ਉਪਰਾਮਤਾ, ਅਸ਼ੰਤੁਸ਼ਟੀ, ਨਿਰਾਸ਼ਾ ਆਦਿ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾ ਕੇ ਉਸਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ, ਖੁਦ-ਮੁਖਤਾਰੀ, ਪਹਿਚਾਣ ਨੂੰ ਫੋਕਸ ਵਿਚ ਲਿਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਮੁਖ ਤੌਰ ਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਕਰਟੀਕ ਬਰਾਬਰੀ ਦਾ ਡਿਸਕੋਰਸ ਹੈ ਅਤੇ ਲਿਬਰਲ ਕਰਟੀਕ ਵਿਅੱਕਤੀਗਤ ਆਜ਼ਾਦੀਆਂ ਦਾ ਡਿਸਕੋਰਸ। ਸਪਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਨਾ ਤਾਂ ਵਿਅੱਕਤੀਗਤ ਆਜ਼ਾਦੀਆਂ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਡਿਸਕੋਰਸ ਦੀ ਬਲੀ ਚੜ੍ਹਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਸਮਾਜਕ ਬਰਾਬਰੀ ਨੂੰ ਲਿਬਰਲ ਡਿਸਕੋਰਸ ਦੀ ਕਬਰ ਵਿਚ ਲਿਟਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਡੀਟੈਰੀਟੋਰੀਅਲਾਈਜ਼ਡ ਕਾਮਿਆਂ ਅਤੇ ਕੰਮ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਵਿਚ ਭਟਕਦੇ ਕਾਮਿਆਂ ਦੀ ਜਮਾਤੀ ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਮਸਲਾ ਹੈ ਜਿਸ ਲਈ ਮਾਰਕਸਵਾਦੀ ਚਿੰਤਕਾਂ ਲਕਲਉ ਅਤੇ ਮਉਫੇ ਦੇ ਕਥਨ ਮੁਤਾਬਕ ਰੈਡੀਕਲ ਪਲੂਰਲ ਡੈਮੋਕਰੈਟਿਕ ਮੂਵਮੈਂਟ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ।[13]

## ਹਵਾਲੇ

1 ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਲਾਇਲਪੁਰ ਖਾਲਸਾ ਕਾਲਿਜ ਫਾਰ ਵਿਮੈਨ, ਜਲੰਧਰ

2 ਗਰੇਵਾਲ, ਅਮਰਜੀਤ (2009), ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਨੀਤੀ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਵੱਲ, ਆਲੋਚਨਾ, ਅੰਕ 220, ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਅਕਾਡਮੀ ਲੁਧਿਆਣਾ, ਪੰਨਾ35-47

3 "If one tries to examine society as a form of communication, one sees it as a process whereby reality is created, shared, modified and preserved" Carey, James W (2008), Communication as Culture, Routledge, pp26

4 ਅੰਕੜਾ ਸਾਰ ਪੰਜਾਬ (2012)ਆਰਥਿਕ ਸਲਾਹਕਾਰ ਪੰਜਾਬ ਸਰਕਾਰ

5 Fisher, Eran (2010), Media and New Capitalism in the Digital Age, Palgrave Macmillan pp 1-11

6 Webster, Frank (2005) Making Sense of the Information Age: Sociology and Cultural Studies, Information, Communication and Society, 8(4), pp 439-58)

7 Castells, Manuel (2010), The Rise of the Network Society, Wiley-Blackwell, pp xvii-xliv

8 ਕੌਰ, ਅਕਾਲ ਅੰਮ੍ਰਿਤ (2013), ਨਵੇਂ ਯੁਗ ਦੀ ਨਵੀਂ ਲੋਕਧਾਰਾ ਵੈੱਬ 2.0, ਸਰਬ ਭਾਰਤੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਲੋਕਧਾਰਾ ਕਾਨਫਰੰਸ, 10-11 ਅਕਤੂਬਰ 2013, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ ਵਿਚ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਖੋਜ ਪੱਤਰ

9 Bell, Daniel (1999), The coming of Post-industrial Society: A venture in social fore casting, Basic Books, New York

10 Greenbaum, Joan (1995), Windows on the workplace: Computers, Jobs and the organization of Office work in the late twentieth century, Monthly Review Books, New York, pp 92

11 Harvey, David (2005), A Brief history of New liberlism, Oxford University Press

12 Boltanski, Luc and Eve Chiapello (2005), The New Spirit of Capitalism, Verso, London

13 Laclau, Ernesto and Chantal Mouffe (2001), Hegemony and Socialist strategy: Towards a radical Democratic Politics, second Edition, Verso, London

# ਮੀਡਿਆ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ

ਡਾ. ਹਰਵਿੰਦਰ ਔਲਖ

"ਇਹ ਉਹ ਧਰਤੀ ਹੈ ਜਿਥੇ ਵੈਦਿਕ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਜੰਮੀ, ਪਲੀ ਤੇ ਜਵਾਨ ਹੋਈ। ਇਥੇ ਹੀ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਗ੍ਰੰਥ ਰਿ-ਗਵੇਦ ਰਚਿਆ ਗਿਆ।" ਇਹ ਕਥਨ ਉੱਘੇ ਵਿਦਵਾਨ ਡਾ. ਸੁਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਕੋਹਲੀ ਦਾ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਕਿਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਅੱਤਕਥਨੀ ਤੋਂ ਕੰਮ ਨਹੀਂ ਲਿਆ ਸੀ। ਸੱਚੀ ਗੱਲ ਤਾਂ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਕਾਲ ਤੋਂ ਹੀ ਸਾਹਿਤ ਨੇ ਸਾਡੇ ਸਭਿਆ-ਚਾਰ ਉੱਪਰ ਨਾ ਮਿਟਣ ਵਾਲਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਭਾਵੇਂ ਸੰਚਾਰ ਦੇ ਸਾਧਨ ਬਹੁਤੇ ਨਹੀਂ ਸਨ, ਬਹੁਤ ਘੱਟ ਜਾਂ ਨਾ ਗੌਲੇ ਜਾਣ ਯੋਗ ਹੋਣਗੇ ਪਰ ਉਸ ਸਮੇਂ ਵੀ ਸਾਹਿਤ ਨੇ ਸਾਡੀ ਰਹਿਣੀ-ਸਹਿਣੀ, ਸਾਡੇ ਆਚਾਰ-ਵਿਚਾਰ, ਸਾਡੀ ਸੋਚ 'ਤੇ ਅਮਿਟ ਪ੍ਰਭਾਵ ਛੱਡਿਆ ਸੀ।

ਜਿਵੇਂ ਕੁਦਰਤ ਆਪਣੇ ਨਿਯਮਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਹੈ ਤਿਵੇਂ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਸੰਚਾਲਨ ਉਸ ਦੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਨਿਯਮਾਂ ਅਧੀਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਨਿਯਮਾਂ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਚੱਲ ਕੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਨਾਂਅ ਦੇ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਇਹ ਨਾਂਅ ਬਹੁ-ਅਰਥੀ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸੋਚਣੀ, ਮਾਨਤਾਵਾਂ, ਰਸਮਾਂ, ਰੀਤਾਂ, ਸਦਾਚਾਰਕ ਮਾਨਦੰਡ ਆਦਿ ਆ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਉਂਝ ਤਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ-ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਸਭ ਸੁਭਾਵਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਹੱਡ ਮਾਸ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਹੁੰਦੇ ਹਨ...ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਲਹੂ ਵਿਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਚਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਕਿਸੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦਿਹਾੜੇ ਜਾਂ ਅਵਸਰ ਉੱਤੇ ਉਸ ਦੀ ਮਹਾਨਤਾ ਦਾ ਵਰਣਨ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਅੰਦਰ ਉਹ ਭਾਵਨਾ ਬਣੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਜਿਹੜੀ ਉਸ ਦਿਹਾੜੇ ਦੀ ਪਿੱਠਭੂਮੀ ਵਿਚ ਕੰਮ ਕਰ ਰਹੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਸਮਾਜ ਦੇ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੀ ਰਹਿਣੀ-ਬਹਿਣੀ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੋਚ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਰਤਾਰੇ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕ ਦਸ਼ਾ ਤੇ ਦਿਸ਼ਾ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਕਲਾਵੇ ਵਿਚ ਆ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਸਭਿਆਚਾਰ ਮਨੁੱਖੀ ਜਨ-ਮਾਨਸ ਦੇ ਸ਼ੀਸ਼ੇ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਰੀਤੀ-ਰਵਾਜ਼, ਸੁੱਖ-ਦੁੱਖ ਦੀਆਂ ਘੜੀਆਂ ਵੇਲੇ ਬੋਲੇ-ਸੁਣੇ ਜਾਣ ਵਾਲੇ ਬੋਲ..ਜਾਂ ਰਸਮਾਂ ਦਾ ਵਰਣਨ ਕਰਨਾ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਪ੍ਰਚਾਰ-ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੇ ਸਾਧਨਾਂ ਦੀ ਲੋੜ ਮਹਿਸੂਸ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਸਮਾਂ ਬੀਤਣ ਨਾਲ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਜਾਗਰੂਕਤਾ ਦਾ ਪੱਧਰ ਉੱਚਾ ਹੁੰਦਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਤੌਰ 'ਤੇ ਛਾਪੇਖਾਨੇ ਦੀ ਆਮਦ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਵਿਚ ਲਿਖਣ-ਪੜ੍ਹਣ ਦਾ ਰੁਝਾਨ ਵਧਿਆ ਹੈ। ਨਵੀਂ ਗੱਲ ਇਹ ਹੋਈ ਕਿ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸ਼੍ਰੇਣੀਆਂ ਵਿਚ ਵੀ ਵਿਦਿਆ ਦਾ ਚਾਨਣ ਫੈਲਿਆ ਜਿਹੜੀਆਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਸ ਤੋਂ ਵੰਚਿਤ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।

ਮੀਡੀਆ, ਪ੍ਰਿੰਟ ਅਤੇ ਇਲੈਕਟ੍ਰਾਨਿਕ ਦੋਵਾਂ ਦਾ ਮਹੱਤਵ ਇਸ ਗੱਲ ਵਿਚ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਸਮੇਂ-ਸਮੇਂ 'ਤੇ ਸਾਡੀਆਂ ਪੁਰਾਣੀਆਂ ਰਸਮਾਂ, ਸਾਡੇ ਤਿਓਹਾਰਾਂ, ਸਾਡੀ ਰਹਿਣੀ-ਬਹਿਣੀ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਤੱਥਾਂ ਦਾ ਅਧਿਐਨ ਕਰਕੇ...ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਉਸੇ ਪਰਿਪੇਖ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਨਾ ਕੇਵਲ ਇਸ ਦੀ ਜਰੂਰੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਸਗੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸਿਖਿਅਤ ਕਰਨ ਦਾ ਉਪਰਾਲਾ ਵੀ ਕਰਦੇ ਹਨ।

ਛਾਪੇਖਾਨੇ ਖੁਲ੍ਹਣ ਨਾਲ ਨਿੱਕੀਆਂ ਵੱਡੀਆਂ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ, ਰਸਾਲੇ ਆਦਿ ਵੀ ਛਪਣੇ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਗਏ ਸਨ। ਇਸ ਨੇ ਜਨ ਮਾਨਸ ਨੂੰ ਜਾਗਰੂਕ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਬਹੁਤ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ ਹੈ। ਛੋਟੀਆਂ-ਛੋਟੀਆਂ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਛਪਣ ਨਾਲ ਲੋਕਾਂ ਵਿਚ ਕੁਝ ਪੜ੍ਹਨ...ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਕੁਝ ਲਿਖਣ ਦਾ ਚਾਅ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ...ਉਹ ਆਪਣੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਜਾਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਤਾਂ ਛਪਣ ਹਿੱਤ ਭੇਜਦੇ ਹੀ ਸਨ...ਨਾਲ ਹੀ ਆਪਣੇ ਛਪੇ ਨੂੰ ਦਿਖਾਉਣ ਤੇ ਪ੍ਰਚਾਰਨ ਦੇ ਉੱਦਮ ਵਿਚ ਲੱਗ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਇਹ ਗੱਲ ਭਾਵੇਂ ਨਿਜੀ ਜਾਂ ਹੇਠਲੇ ਪੱਧਰ ਦੀ ਕਿਉਂ ਨਾ ਹੋਵੇ ਪਰ ਇਸ ਨਾਲ ਵਿਦਿਆ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤਕ ਕਿਰਤਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰ ਹੋਇਆ। ਉਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਇਹੋ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਸਾਧਨ ਸੀ।

ਇਕ ਹੋਰ ਉੱਘੇ ਵਿਦਵਾਨ ਡਾ. ਰਾਜੇਸ਼ ਸ਼ਰਮਾ ਨੇ ਕੁਝ ਵਰ੍ਹੇ ਪਹਿਲਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ ਦੁਆਰਾ ਕਰਾਏ ਗਏ ਇਕ ਸੈਮੀਨਾਰ ਵਿਚ ਪਰਚੇ ਵਿਚ ਆਪਣੇ ਕਥਨ ਦਾ ਆਰੰਭ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨਾਲ ਕੀਤਾ ਸੀ, "ਪੰਜਾਬ ਭਾਰਤ ਦਾ ਉਹ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਹੈ ਜਿਸਦੀ ਪਵਿੱਤਰ ਧਰਤੀ ਉੱਤੇ ਮਹਾਨ ਸੰਤਾਂ, ਭਗਤਾਂ, ਪੈਗੰਬਰਾਂ ਅਤੇ ਗੁਰੂਆਂ ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ। ਇਥੋਂ ਦੀ ਸਭਿਅਤਾ ਤੇ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵੀ ਓਨੀ ਹੀ ਪੁਰਾਣੀ ਹੈ ਜਿੰਨਾ ਮਾਨਵੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਕਿਉਂਕਿ ਮਾਨਵੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਸਭ ਤੋਂ ਪੁਰਾਣੇ ਹਵਾਲੇ ਵੇਦਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਇਥੋਂ ਦੀ ਧਰਤੀ 'ਤੇ ਹੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।"

ਪੰਜ ਦਰਿਆਵਾਂ ਦੀ ਇਹ ਧਰਤੀ ਭਾਰਤ ਦਾ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਦਆਰ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਥੇ ਇਰਾਨੀ, ਯੂਨਾਨੀ, ਤੁਰਕ ਆਦਿ ਵਿਦੇਸ਼ੀ ਤਾਕਤਾਂ ਦੇ ਹਮਲਿਆਂ ਕਾਰਨ ਇੱਥੋਂ ਦੀ ਸੱਭਿਅਤਾ ਅਤੇ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਨਿਰੰਤਰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੁੰਦੀ ਰਹੀ ਜਿਸ ਦੇ ਫਲਸਰੂਪ ਇਥੋਂ ਦੇ ਵਸਨੀਕਾਂ ਵਿਚ ਜੁਝਾਰੂਪਣ ਅਤੇ ਹਰ ਸਮਸਿਆ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਲਈ ਤਿਆਰ-ਬਰ-ਤਿਆਰ ਰਹਿਣ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਪ੍ਰਬਲ ਹੋ ਗਈ, ਜੋ ਉਸ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਵਿਚ ਦਿਖਾਈ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਨੱਚਦਾ, ਟੱਪਦਾ, ਗਾਉਂਦਾ ਹੋਇਆ ਬਤੀਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਉਸ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਜਨਮ ਤੋਂ ਮੌਤ ਤਕ ਦੇ ਸਫਰ ਸਬੰਧੀ ਅਨੇਕਾਂ ਗੀਤ ਲੋਕ ਮਨਾਂ ਵਿਚੋਂ ਉਠਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਗਾਇਨ ਉਹ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸੰਸਕਾਰਾਂ, ਉਤਸਵਾਂ, ਮੇਲਿਆਂ, ਤਿਉਹਾਰਾਂ ਨੂੰ ਮਨਾਉਂਦੇ ਹੋਏ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਸਬੰਧ ਵਿਚ ਲੋਰੀਆਂ, ਖੇਡਾਂ ਸਬੰਧੀ ਗੀਤ, ਵਿਆਹ ਸਬੰਧੀ ਗੀਤ ਜਿਵੇਂ ਸੁਹਾਗ, ਘੋੜੀਆਂ, ਸਿੱਠਣੀਆਂ, ਲਾਵਾਂ ਤੇ ਡੋਲੀ ਗੀਤ। ਮੌਤ ਸਬੰਧੀ ਗੀਤ ਜਿਵੇਂ ਵੈਣ, ਕੀਰਨੇ, ਅਲਾਹੁਣੀਆਂ ਆਦਿ।

ਲੋਕ ਗਾਇਕਾਂ ਦੀਆਂ ਗਾਥਾਵਾਂ ਸਬੰਧੀ ਕਿੱਸੇ ਹੀਰ, ਕੀਮਾ, ਪੂਰਨ, ਮਿਰਜ਼ਾ, ਦੁੱਲਾ, ਜ਼ੈਮਲ ਫੱਤਾ ਆਦਿ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰੀਆਂ ਕਿਰਤਾਂ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕ-ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਝਲਕੀਆਂ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਹ ਕਿੱਸੇ ਕੇਵਲ ਪ੍ਰੇਮ ਕਥਾਵਾਂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਹਨ ਸਗੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਜਨ-ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਇਕ ਪਹਿਲੂ ਦੀ ਤਰਜਮਾਨੀ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਦੀਆਂ ਹਜਾਰਾਂ ਮਿਸਾਲਾਂ ਦਿੱਤੀਆਂ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ। ਜੇ ਕਿੱਸੇ ਨੇ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਦੀ 'ਹੀਰ' ਹੈ।

ਪ੍ਰੀਤ ਲੜੀ ਅਤੇ ਫੁਲਵਾੜੀ ਜਿਹੀਆਂ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਦੇ ਛਪਣ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਹੁੰਗ-ਾਰਾ ਮਿਲਿਆ ਹੈ। ਵਿਦਵਾਨ ਲੇਖਕਾਂ ਤੇ ਕਵੀਆਂ ਵੱਲੋਂ ਸਮੇਂ-ਸਮੇਂ ਤੇ ਲਿਖੇ ਗਏ ਜਾਂ ਲਿਖੇ ਜਾਂਦੇ ਲੇਖਾਂ, ਕਹਾਣੀਆਂ ਤੇ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਆਦਿ ਵਿਚ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਉਭਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਨੇ ਜਿਥੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਅਨੇਕ ਹੋਣਹਾਰ ਲੇਖਕ, ਕਵੀ, ਨਾਟਕਕਾਰ ਜਾਂ ਵਾਰਤਕ ਲਿਖਾਰੀ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਉਥੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪਾਠਕਾਂ ਦਾ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਵਰਗ ਹੋਂਦ ਵਿਚ ਆਇਆ ਹੈ। ਕੋਈ ਸਮਾਂ ਸੀ ਜਦ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਸੈਂਕੜਿਆਂ ਵਿਚ ਹੁੰਦੀ ਹੋਵੇਗੀ ਪਰ ਅੱਜ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਲੱਖਾਂ-ਕਰੋੜਾਂ ਵਿਚ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਸਾਡਾ ਸਭਿਆਚਾਰ ਪਹਿਲਾਂ ਨਾਲੋਂ ਕਿਤੇ ਵੱਧ ਅਮੀਰ ਹੋਇਆ ਹੈ।

ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਤੋਂ ਛੁੱਟ ਰੋਜਾਨਾ ਅਖਬਾਰਾਂ ਦੇ ਛੱਪਣ ਨਾਲ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਅਮੀਰ ਹੋਣ ਦੀ ਗਤੀ ਬਹੁਤ ਤੇਜ਼ ਹੋਈ ਹੈ। ਅਕਾਲੀ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾ, ਕੌਮੀ ਦਰਦ, ਅਕਾਲੀ ਟਾਈਮਜ਼, ਅਜੀਤ, ਜੱਗਬਾਣੀ, ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, ਚੜ੍ਹਦੀ ਕਲਾ, ਅੱਜ ਦੀ ਆਵਾਜ਼, ਨਵਾਂ ਜ਼ਮਾਨਾ, ਦੇਸ਼ ਸੇਵਕ ਨੇ ਸਾਡੀ ਸਭਿਆਚਾਕ ਅਮੀਰੀ ਨੂੰ ਦੇਸ਼ ਵਿਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਉਜਾਗਰ ਕਰਨ ਵਿਚ ਬਹੁਮੁੱਲਾ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਵਿਦਵਾਨ ਲੇਖਕ ਜਾਂ ਕਵੀ ਸੱਜਣ ਦਿਨ ਤਿਓਹਾਰਾਂ ਜਾਂ ਦੂਜੇ ਮੌਕਿਆਂ 'ਤੇ ਪੁਰਾਤਨ ਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਲਿਖਾਰੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ ਦੀ ਘੋਖ ਪੜਤਾਲ ਕਰਦੇ ਹਨ...ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਜਨਤਾ ਦੇ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਦੀ 'ਹੀਰ', ਹਾਸ਼ਮ ਸ਼ਾਹ ਦੀ 'ਸੱਸੀ ਪੁਨੂੰ', ਫਜ਼ਲ ਸ਼ਾਹ ਦੀ 'ਸੋਹਣੀ ਮਹੀਂਵਾਲ' ਜਿਹੇ ਕਿੱਸਿਆਂ ਦੀਆਂ ਟੂਕਾਂ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਦੇ-ਦੇ ਕੇ ਕੇਵਲ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਮਹਾਨਤਾ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਿੱਸਿਆਂ ਦੀਆਂ ਤੁਕਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਮੂੰਹਾਂ 'ਤੇ ਚੜ੍ਹੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਹਨ।

ਇਲੈਕਟ੍ਰਾਨਿਕ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਆਮਦ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਪਹਿਲਾਂ ਨਾਲੋਂ ਕਿਤੇ ਵੱਧ ਹੁਲਾਰਾ ਮਿਲਿਆ ਹੈ। ਪੀ.ਟੀ.ਸੀ. ਪੰਜਾਬੀ, ਚੜ੍ਹਦੀਕਲਾ ਜਿਹੇ ਨਿਰੋਲ ਪੰਜਾਬੀ ਚੈਨਲ ਨਾ ਕੇਵਲ ਪੰਜਾਬੀ ਜਨ-ਜੀਵਨ ਦੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਪਹਿਲੂਆਂ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੇ ਹਨ ਸਗੋਂ ਫੀਚਰ ਫ਼ਿਲਮਾਂ, ਦਸਤਾਵੇਜੀ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਅਤੇ ਸਥਾਨ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਜਾਂ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਬਾਰੇ ਬਣੀਆਂ ਫਿਲਮਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਸਾਰਣ ਕਰਕੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਜਾਗਰੂਕ ਕਰਨ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਬਣਦਾ ਹਿੱਸਾ ਪਾਉਂਦੇ ਹਨ।

ਦੇਸ਼ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਵਿਦੇਸ਼, ਗਲੋਬ ਦਾ ਕੋਈ ਵੀ ਨੁੱਕਰ ਕਿਉਂ ਨਾ ਹੋਵੇ, ਜਿਥੋਂ ਤਕ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਸਬੰਧ ਹੈ...ਉਹ ਹਰ ਥਾਂ ਵਿਲੱਖਣ ਹੁੰਦਾ ਹੈ...ਹਰ ਖਿੱਤੇ ਦਾ ਸਭਿਆਚਾਰ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਿੰਨੀਆਂ ਵਿਲੱਖਣਤਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸਮੋਈ ਬੈਠਾ ਹੈ...ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਜਾਣਨਾ ਜਾਂ ਸਮਝਣਾ ਭਾਵੇਂ ਔਖਾ ਨਾ ਹੋਵੇ...ਪਰ ਇਸ ਲਈ ਖੋਜੀ ਵਿਦਵਾਨ ਸੱਜਣਾ ਦਾ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਵਾਹ, ਅਧਿਐਨ ਦੀ ਨਿਰੰਤਰਤਾ, ਵਿਸ਼ੇ ਵਿਚ ਗਹਿਰੀ ਦਿਲਚਸਪੀ, ਕੁਝ ਨਵਾਂ ਜਾਣਨ ਦੀ ਚਾਹ ਹੋਣੀ ਜਰੂਰੀ ਹੈ। ਮਹਾਨ ਭਾਸ਼ਾ-ਵਿਗਿਆਨੀ ਤੇ ਸਮਾਜ-ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਜਾਰਜ ਗ੍ਰਿਅਰਸਨ, ਮੈਕਸਮੂਲਰ ਤੇ ਫਾਦਰ ਕਾਮਲ ਬੁਲਕੇ ਜਿਹੇ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਨੇ ਆਪਣਾ ਪੂਰਾ ਜੀਵਨ ਭਾਰਤ ਦੀਆਂ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਵਿਆਕਰਣਕ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ ਦੇ ਚੌਖਟੇ ਵਿਚ ਕੰਮ ਕਰਦਿਆਂ ਭਾਰਤ ਦੇ ਸਭਿਆਰਚਕ ਜੀਵਨ ਦੇ ਗਹਿਨ ਅਧਿਐਨ ਦੇ ਲੇਖੇ ਲਾ ਦਿੱਤਾ ਸੀ।

ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਡੂੰਘੀ ਦਿਲਚਸਪੀ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ ਖੋਜੀ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਲਈ ਜਾਰਜ ਗ੍ਰਿ-ਅਰਸਨ, ਮੈਕਸਮੂਲਰ ਤੇ ਫਾਦਰ ਕਾਮਲ ਬੁਲਕੇ ਜਿਹੇ ਮਹਾਨ ਵਿਦਵਾਨ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਦਾ ਸੋਮਾ ਰਹੇ ਹਨ...ਇਨ੍ਹਾਂ ਮਹਾਨ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਨੇ ਸਾਡੇ ਲਈ ਸਦਾ ਚਾਨਣ ਮੁਨਾਰੇ ਦਾ ਕੰਮ ਕੀਤਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬ ਖੇਤੀਬਾੜੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਲੁਧਿਆਣਾ ਦੇ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ ਡਾ. ਰਣਜੀਤ ਸਿੰਘ ਨੇ "ਪੰਜਾਬੀ ਪੇਂਡੂ ਸਮਾਜ ਉੱਤੇ ਮੀਡੀਏ ਦਾ ਪੈ ਰਿਹਾ ਪ੍ਰਭਾਵ" ਸਿਰਲੇਖ ਹੇਠ ਆਪਣੇ ਸ਼ੋਧ ਪੱਤਰ ਵਿਚ ਲਿਖਿਆ ਹੈ, "ਇੱਕੀਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬ ਵਾਸੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਨੇ ਮੀਡੀਏ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਕਬੂਲਿਆ ਹੈ। ਪਿਛਲੀ ਸਦੀ ਦੇ ਅਖ਼ੀਰ ਤਕ ਪਿੰਡ ਵਾਸੀ ਇਸ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਤੋਂ ਬਹੁਤੇ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਨਹੀਂ ਹੋਏ ਸਨ, ਪਰ ਹੁਣ ਪਿੰਡ ਵੀ ਇਸ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਆ ਗਏ ਹਨ.....।"

ਇਹ ਹਕੀਕਤ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਆਮਦ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਖੇਤਰਾਂ ਵਿਚ ਵਿਦਿਆ ਦਾ ਚਾਨਣ ਫੈਲਾਉਣ ਦੇ ਕੰਮ ਵਿਚ ਸ਼ਲਾਘਾਯੋਗ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਸਾਡੇ ਸ਼ਹਿਰ ਤਾਂ ਪਹਿਲੇ ਦਿਨ ਤੋਂ ਹੀ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਰਹੇ ਹਨ, ਪਰ ਹੁਣ ਪਿੰਡ ਵੀ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਪਿੱਛੇ ਨਹੀਂ ਰਹੇ। ਇਲੈਕਟ੍ਰਾਨਿਕ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਗਤੀ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਤੇਜ਼ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਚੈਨਲਾਂ ਵਿਚ ਆਏ ਦਿਨ ਲੋਕ ਗਾਇਕਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕਦੇ ਇਹ ਲੋਕ ਗਾਇਕ ਕਿਸੇ ਥਾਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦੇ ਸ੍ਰੋਤਿਆਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਕਲਾ ਦੇ ਜੌਹਰ ਦਿਖਾਇਆ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਅੱਜ ਜਦੋਂ ਇਕ ਲੋਕ ਗਾਇਕ ਕਿਸੇ ਚੈਨਲ ਉੱਪਰ ਆਪਣਾ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਕ ਸ਼ਥਾਨ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਹਰ ਪਿੰਡ, ਹਰ ਗਲੀ, ਹਰ ਕੂਚਾ, ਹਰ ਨੁੱਕੜ ਉਸ ਦੀ ਸੁਰੀਲੀ ਗਾਇਕੀ ਦਾ ਆਨੰਦ ਮਾਣ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਹਿਲਾਂ ਕੇਵਲ ਸ੍ਰੋਤੇ ਹੁੰਦੇ ਸਨ, ਹੁਣ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਥਾਂ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਨੇ ਲੈ ਲਈ ਹੈ...। ਵੈਸੇ ਸ੍ਰੋਤੇ ਵੀ ਆਪਣੀ ਥਾਂ ਬਣੇ ਹੋਏ ਹਨ। ਟੀ. ਵੀ. ਚੈਨਲਾਂ 'ਤੇ ਵੰਨ-ਸੁਵੰਨੇ ਨਾਟਕ (ਵਰਤਮਾਨ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਸੀਰੀਅਲ-ਜਿਹੜੇ ਇਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਲੜੀਵਾਰ ਨਾਟਕ ਹੁੰਦੇ ਹਨ) ਜਾਂ ਫੀਚਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।

ਮਹਾਨ ਲੇਖਕਾਂ ਜਾਂ ਕਵੀਆਂ ਦੇ ਜਨਮ ਦਿਹਾੜਿਆਂ ਜਾਂ ਬਰਸੀਆਂ ਦੇ ਮੌਕੇ ਟੀ.ਵੀ. ਚੈਨਲ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਵਾਂਗ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਕਿਸੇ ਇਕ ਜਾਂ ਦੋ-ਤਿੰਨ ਲੇਖਕਾਂ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਉੱਪਰ ਬੋਲਣ ਲਈ ਬੁਲਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਨਾਲ ਵੀ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਆਪਣੇ ਵਿਰਸੇ, ਆਪਣੇ ਲਿਖਾਰੀਆਂ ਜਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਬਹਾਨੇ ਆਪਣੇ ਮਾਣ ਮੱਤੇ ਵਿਰਸੇ ਨਾਲ ਬਣਦੀ ਹੈ। ਲੇਖਕਾਂ ਦੇ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਕਰਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਜਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵਾਰਤਾ ਲਈ ਬੁਲਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦਾ ਮੂਲ ਉਦੇਸ਼ ਇਹੋ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਸ਼ੰਸਕਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਬਾਰੇ, ਆਪਣੀ ਕਲਾ ਜਾਂ ਰਚਨਾ ਬਾਰੇ ਜਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਬਾਰੇ ਆਪਣੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਤੋਂ ਜਾਣੂ ਕਰਾਉਣ।

ਅਸੀਂ ਇਥੇ ਇਸ ਦੇ ਦੂਜੇ ਪੱਖ ਦੀ ਚਰਚਾ ਵੀ ਕਰਨੀ ਚਾਹਾਂਗੇ। ਇਹ ਠੀਕ ਹੈ ਕਿ ਸਥਾਪਿਤ ਪੰਜਾਬੀ ਗਾਇਕ ਅਤੇ ਗਾਇਕਾਵਾਂ ਘਰ-ਘਰ ਸੁਣੀਆਂ ਜਾਣ ਲੱਗੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਨਾਲ ਕਲਾਕਾਰਾਂ ਦੀ ਲੋਕਪ੍ਰਿਅਤਾ ਤਾਂ ਬੇਸ਼ਕ ਵਧੀ ਹੈ, ਪਰ ਸ੍ਰੋਤਾ ਤੇ ਗਾਇਕ ਵਿਚਕਾਰ ਪਹਿਲਾਂ ਵਾਲੀ ਸਾਂਝ ਹੁਣ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦੀ। ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਕਲਾਕਾਰ ਸਿੱਧਾ ਲੋਕਾਂ ਵਿਚ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਕਲਾਕਾਰ ਅਤੇ ਸ੍ਰੋਤੇ ਵਿਚਕਾਰ ਵਿਚੋਲੇ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੇ ਸਨ। ਉਹ ਇਕ-ਦੂਜੇ ਨਾਲ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਹੁੰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਵਰਤਮਾਨ ਵਿਚ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਜ਼ਰੂਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ...ਪਰ ਸਭ ਦੂਰੋਂ ਦੂਰੋਂ... ਸ੍ਰੋਤਾ-ਦਰਸ਼ਕ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਟੀ. ਵੀ. ਸਕਰੀਨ ਉੱਪਰ ਆਪਣੇ ਮਨ ਭਾਉਂਦੇ ਕਲਾਕਾਰ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਦੋਵੇਂ ਇਕ ਦੂਸਰੇ ਦੇ ਆਹਮੋ-ਸਾਹਮਣੇ ਹੋਣੋਂ ਹਟ ਗਏ ਅਤੇ ਦੋਹਾਂ ਵਿਚਲਾ ਸਿੱਧਾ ਸੰਵਾਦ ਖ਼ਤਮ ਹੋ ਗਿਆ।

ਇਲੈਕਟ੍ਰਾਨਿਕ ਮਾਧਿਅਮ ਨੇ ਜਿੱਥੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਪ੍ਰਫੁੱਲਤ ਕਰਨ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਸ਼ਲਾਘਾਯੋਗ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ ਹੈ ਉਥੇ ਉਸ ਕਾਰਨ ਕੁਝ ਨਾਂਹ-ਪੱਖੀ ਰੁਝਾਨ ਵੀ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਕੁਝ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦਾ ਮਿਆਰ ਚੰਗਾ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਤੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਸੋਚ ਜਗਤ ਉੱਪਰ ਉਸ ਦਾ ਮਾਰੂ ਅਸਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਕ ਗੱਲ ਜਿਹੜੀ ਸ਼ਿੱਦਤ ਨਾਲ ਅਨੁਭਵ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ, ਉਹ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਟੀ.ਵੀ. ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦੇ ਚੱਕਰ ਵਿਚ ਦਰਸ਼ਕ ਨਿੱਜ ਤਕ ਸੀਮਿਤ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਿਹੜੀ ਪਹਿਲਾਂ ਸਾਮੂਹਿਕਤਾ ਹੁੰਦੀ ਸੀ, ਉਹ ਖ਼ਤਮ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਵਿਅਕਤੀ ਆਪਣੇ ਘਰ ਦੇ ਡਰਾਇੰਗ ਰੂਮ ਵਿਚ ਬੈਠਾ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਨੂੰ ਮਾਣਦਾ ਆਲੇ-ਦੁਆਲੇ ਤੋਂ ਕਟ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਜੇਕਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨਕਾਰਾਤਮਕ ਰੁਝਾਨਾਂ ਨੂੰ ਘੱਟ ਤੋਂ ਘੱਟ ਕਰਨ ਅਤੇ ਉਸਾਰੂ ਤੇ ਹਾਂ-ਪੱਖੀ ਰੁਝਾਨਾਂ ਨੂੰ ਵਧਾਉਣ ਦੇ ਉਪਰਾਲੇ ਕੀਤੇ ਜਾਣ ਤਾਂ ਟੀ.ਵੀ. ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਸੱਚ ਮੁੱਚ ਸਾਡੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਕਾਸ ਲਈ ਵਰਦਾਨ ਹੋ ਨਿਬ-ੜੇਗਾ। ਉੱਘੇ ਵਿਦਵਾਨ ਤੇ ਸਿੱਖਿਆ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਡਾ: ਜਸਪਾਲ ਸਿੰਘ ਨੇ ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਨਿਸ਼ਕਰਸ਼ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨਾਲ ਕੱਢਿਆ ਹੈ, "ਜੇਕਰ ਮੀਡਿਆ ਵਿਚੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਰਾਸਤ, ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰੇਡੀਸ਼ਨ, ਪੰਜਾਬੀ ਪਿਛੋਕੜ, ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਈਚਾਰਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਰਵਾਇਤ, ਪੰਜਾਬੀ ਸੁਭਾਅ ਦਾ ਰਿਫਲੈਕਸ਼ਨ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਮੀਡਿਆ ਠੀਕ ਹੈ।"

ਡਾਕਟਰ ਨਿਵੇਦਿਤਾ ਸਿੰਘ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ, "ਜਨ-ਸੰਚਾਰ ਇਕ ਵਿਸ਼ਾਲ ਦਾਇਰੇ ਵਿਚ ਫ਼ੈਲਿਆ ਹੋਇਆ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਮਾਧਿਅਮ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਜਿਥੇ ਸੂਚਨਾ ਤੇ ਜਾਣਕਾਰੀ ਹਾਸਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਉਥੇ ਇਹ ਸਮਾਜੀਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਤਹਿਤ ਵਿਚਰਦਾ ਹੋਇਆ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਕਾਸ ਵਿਚ ਬਹੁਤ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਉਂਦਾ ਹੈ।" ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਕਹਿਣਾ ਠੀਕ ਹੈ। ਆਸ ਹੈ ਕਿ ਸਾਡੇ ਵਿਦਵਾਨ, ਕਲਾਕਾਰ, ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਦੂਜੀਆਂ ਉੱਘੀਆਂ ਹਸਤੀਆਂ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਇਸ ਪੱਖ ਵੱਲ ਉਚੇਚਾ ਧਿਆਨ ਦੇਣਗੀਆਂ।

## ਹਵਾਲੇ

1. ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ (ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ ਵਲੋਂ 21-23 ਜਨਵਰੀ, 2014 ਨੂੰ ਆਯੋਜਿਤ 30ਵੀਂ ਅੰਤਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਕਾਸ ਕਾਨਫਰੰਸ ਸਮੇਂ ਪੜ੍ਹੇ ਗਏ ਪੇਪਰ--ਸੰਪਾਦਕ... ਡਾ. ਜਸਬੀਰ ਸਿੰਘ)
2. ਡਾਕਟਰ ਰਣਜੀਤ ਸਿੰਘ, ਪੰਨਾ 50
3. ਡਾ. ਜਸਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਪੰਨਾ 362
4. ਡਾ. ਨਿਵੇਦਿਤਾ ਸਿੰਘ, ਪੰਨਾ 98

# ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ

ਡਾ. ਰੰਜੂ ਬਾਲਾ

ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਇਸ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਮਨੁੱਖੀ ਕਾਰ-ਵਿਹਾਰ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਇਕ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਸਾਧਨ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ। 'ਹੁਣ ਮੀਡੀਆ ਸਿਰਫ਼ ਸੰਚਾਰ ਦਾ ਇਕ ਮਾਧਿਅਮ ਹੀ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ ਸਗੋਂ ਸੱਤਾ ਅਤੇ ਨਵ-ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦਾ ਇਕ ਬਹੁਤ ਤਾਕਤਵਰ ਹਥਿਆਰ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਮਾਧਿਅਮ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਲਈ ਲੋੜੀਂਦੇ ਖਪਤਕਾਰੀ ਵਰਗ ਦੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਮੁਤਾਬਕ ਢਾਲ ਰਿਹਾ ਹੈ।'[1] ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀ-ਡੀਆ ਸਾਡੀ ਸੋਚ ਅਤੇ ਸਾਡੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬਦਲ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਮੀਡੀਆ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਤੋਂ ਦੂਰ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਦੇ ਪੱਖ 'ਚ ਖੜ੍ਹਾ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ।'ਆਮ ਤੌਰ 'ਤੇ ਮੀਡੀਏ ਤੋਂ ਭਾਵ ਸੂਚਨਾ ਤੇ ਸੰਚਾਰ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਅਜਿਹੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਤੋਂ ਲਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜੀਆਂ ਵੱਡੇ ਪੱਧਰ ਉੱਪਰ ਸੂਚਨਾ ਤੇ ਹੋਰ ਸੰਬੰਧਿਤ ਸਮੱਗਰੀ ਨੂੰ ਦ੍ਰਿਸ਼ਬਿੰਬਾਂ ਤੇ ਧੁਨੀਬਿੰਬਾਂ ਰਾਹੀਂ ਪੈਦਾ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਤਿਹਾਸਕ ਪੱਖੋਂ ਨਜ਼ਰ ਮਾਰੀਏ ਤਾਂ ਇਸ ਦਾ ਆਰੰਭ ਪ੍ਰਿੰਟਿੰਗ ਪ੍ਰੈਸ ਦੀ ਖੋਜ ਨਾਲ ਮੰਨਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸ਼ੁਰੂ-ਸ਼ੁਰੂ ਵਿਚ ਧਾਰਮਿਕ ਸਾਹਿਤ, ਚਿਕਿਤਸਾ, ਕਾਨੂੰਨ ਤੇ ਸਾਹਿਤ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਸਮੱਗਰੀ, ਬਾਅਦ ਵਿਚ ਉੱਨੀਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਚ ਉਦਯੋਗਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਨੇ ਪੁਸਤਕਾਂ, ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਤੇ ਮੈਗ਼ਜ਼ੀਨ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਇਸ ਉਦਯੋਗ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਵਿਚ ਹੋਰ ਵਾਧਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਪਰ ਜਿਸ ਮੀਡੀਆ ਉਦਯੋਗ ਦਾ ਵਿਸਫੋਟ ਅੱਜ ਦਿਸਦਾ ਹੈ, ਇਹ ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੀ ਦੇਣ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਸਿਨੇਮਾ, ਰੇਡੀਓ, ਟੀ.ਵੀ., ਕੰਪਿਊਟਰ, ਮੋਬਾਇਲ ਤੇ ਇਹਨਾਂ ਵੱਲੋਂ ਸਿਰਜਿਤ ਪਾਠਾਂ ਦੀ ਮੁੱਖ ਭੂਮਿਕਾ ਹੈ।'[2]

ਸਮਕਾਲੀ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਮੁੱਖ ਮਕਸਦ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਮੁਨਾਫ਼ਾ ਕਮਾਉਣਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਲਈ ਉਹ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਦਾਅ-ਪੇਚ ਖੇਡਣ ਲਈ ਵੀ ਤਿਆਰ ਬਰ ਤਿਆਰ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਦੀ ਸਰਵ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਤਾਕਤ ਹੈ- ਮਾਰਕਿਟ ਜੋ ਸਾਨੂੰ ਬਾਰ-ਬਾਰ 'ਨਵੇਂ ਤੋਂ ਨਵਾਂ' 'ਪਹਿਲਾਂ ਤੋਂ ਬੇਹਤਰ', 'ਸਿਰਫ਼ ਤੁਹਾਡੇ ਲਈ' ਵਾਲਾ ਮਾਡਲ ਉਪਲੱਬਧ ਕਰਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਅਜੋਕਾ ਮੀਡੀਆ ਆਪਣੇ ਉਪਭੋਗੀ ਨੂੰ ਇਕ ਉਤਪਾਦ ਵਜੋਂ ਤਿਆਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਮੁਨਾਫ਼ੇ ਲਈ ਇਸ ਨੂੰ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਜਗਤ ਨੂੰ ਵੇਚ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਉਪਭੋਗ ਨਿਰਮਤ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਵਸਤੂ ਨਿਰਮਾਣ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਜ਼ਰੂਰਤ- ਮੰਗ ਨਿਰਮਾਣ ਦੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਲਈ ਉਹ ਦੋ ਤੱਤਾਂ 'ਕਿਸ ਦੇ ਲਈ' ਤੇ 'ਕਿਸ ਪ੍ਰਕਾਰ' ਦੀ ਪਛਾਣ ਕਰਦਾ ਹੈ। 'ਕਿਸਦੇ ਲਈ' ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਉਸ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਵਰਗ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਲਈ ਵਸਤੂ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤੇ 'ਕਿਸ ਪ੍ਰਕਾਰ' ਵਿਚ ਮਾਧਿਅਮ ਦੀ ਚੋਣ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਦੁਆਰਾ ਉਹ ਜਲਦੀ ਹੀ ਉਸ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਵਰਗ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚ ਸਕੇ। ਵੈਸੇ ਤਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਬਿੰਦੂ ਇਕ ਹੀ ਵਰਗ ਹੈ, ਉਹ ਹੈ ਮੱਧ ਵਰਗ, ਜੋ ਨਿਮਨ ਹੋਣ ਤੋਂ ਨਫ਼ਰਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉੱਚਾ ਹੋ ਨਹੀਂ ਪਾਉਂਦਾ। ਪਰ ਇਸ ਮੱਧ ਵਰਗ ਵਿਚ ਵੀ ਹਰੇਕ ਵਸਤੂ ਕਿਸੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਵਰਗ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਲੈਂਦੀ ਹੈ ਜਿਵੇਂ :-

**ਆਫ਼ਟਰ ਸ਼ੇਵਿੰਗ ਕਰੀਮ**- ਮਰਦੋਂ ਕੇ ਲੀਏ-ਮਰਦੋਂ ਵਾਲੀ ਬਾਤ।
**Iodex**- ਜੋੜੋ ਮੇਂ ਆਰਾਮ-ਦਾਦੀ ਮਾਂ ਕਾ ਕਾਮ ਆਸਾਨ।
**ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਮਸਾਲਾ**-ਅਬ ਗ੍ਰਹਿਣੀ ਕਾ ਕਾਮ, ਚੁਟਕੀਓ ਮੇਂ ਆਸਾਨ।

ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੇ ਕੋਲ ਹਰ ਵਰਗ ਦੇ ਲਈ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਵਸਤੂ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਬਾਜ਼ਾਰ ਮਨੋਵਿਗਿਆਨ ਦਾ ਸਹਾਰਾ ਲੈ ਕੇ ਸਾਡੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਸੰਦੇਸ਼ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਬਾਜ਼ਾਰ ਨਹੀਂ ਭੁੱਲਦਾ ਕਿ ਭਾਰਤੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਅੱਜ ਵੀ ਪੁਰਾਤਨ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਮਹੱਤਵ ਦਿੰਦੀ ਹੈ, ਇਸ ਦੇ ਲਈ ਉਸ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਦੋ ਮਾਧਿਅਮ- ਪਰਿਵਾਰ ਤੇ ਦੇਸ਼ ਭਗਤੀ ਹਨ। ਮਾਂ ਦੇ ਹੱਥਾਂ ਵਰਗਾ ਸੁਆਦ ਜਦੋਂ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹੋਏ ਵੀ ਉਤਪਾਦ ਜ਼ਰੂਰਤ ਵਿਚ ਬਦਲਣ ਲੱਗਦਾ ਹੈ। ਘਰੇਲੂ ਔਰਤਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ 'ਪਰਿਵਾਰ' ਨੂੰ ਸਥਾਨ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪਰਿਵਾਰ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਦੂਸਰਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਤੱਤ-ਦੇਸ਼ ਹੈ। 'ਦੇਸ਼' ਨੂੰ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਰੱਖ ਕੇ ਬਾਜ਼ਾਰ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਵੇਚਦਾ ਹੈ, ਸੀਰੀਅਲ ਵੇਚਦਾ ਹੈ ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਫ਼ੌਜੀਆਂ ਦੇ ਬਹਾਦਰੀ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵੀ ਵੇਚਦਾ ਹੈ। ਫ਼ਰੈਂਕਫ਼ਰਟ ਸਕੂਲ ਅਨੁਸਾਰ, 'ਮੀਡੀਆ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਤੰਤਰ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਪਤਿਆਉਂਦਾ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਵਿਚ ਇਕ ਅਜਿਹੇ ਸਮੂਹ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਪਰਿਵੇਸ਼ ਕਰਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਮੂਹਕ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਕਾਬੂ ਅਤੇ ਸੋਧਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਜਿਸਦਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਉਦੇਸ਼ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਾਧਾਰਨ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੀ ਯਥਾਰਕਤਾ ਤੋਂ ਪਾਸੇ ਲੈ ਜਾਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।'[3]

ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਇਸ ਦੌਰ 'ਚ ਮੀਡੀਆ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਨੂੰ ਵੱਡਾ ਹੁਲਾਰਾ ਦੇਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹ ਇਸ ਵਿਚ ਕਾਫ਼ੀ ਹੱਦ ਤੱਕ ਸਫ਼ਲ ਹੁੰਦਾ ਨਜ਼ਰ ਵੀ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਇਹ ਅਮੀਰਾਂ ਦਾ ਮੀਡੀਆ ਹੈ ਅਤੇ ਅਮੀਰਾਂ ਲਈ ਹੈ। ਵਸਤਾਂ ਨੂੰ ਵੇਚਣ ਲਈ ਬਾਜ਼ਾਰ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦਾ ਸਹਾਰਾ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਪਰ ਕੋਈ ਵੀ ਕੰਪਨੀ ਕਿਸੇ ਵੀ ਚੀਜ਼ ਨੂੰ ਖਰੀਦਣ ਲਈ ਸਾਨੂੰ ਸਿੱਧੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਮਜ਼ਬੂਰ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਇਹਨਾਂ ਕੰਪਨੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਤਿਆਰ ਕੀਤੇ ਗਏ ਵਿਗਿਆਪਨ ਸਾਨੂੰ ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਮਾਨਸਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਉਸ ਵਸਤੂ ਨੂੰ ਖਰੀਦਣ ਲਈ ਅਸਿੱਧੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਤਿਆਰ ਕਰ ਰਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਜਿੱਥੇ **ਟੈਲੀਕਾਮ ਰੈਗੂਲੇਟਰੀ ਅਥਾਰਟੀ ਆਫ਼ ਇੰਡੀਆ** ਨੇ ਮਈ 2012 ਵਿਚ ਇਹ ਵਿਚਾਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ ਕਿ ਟੀ. ਵੀ. ਚੈਨਲ ਵਾਲੇ ਆਪਣੇ ਇਕ ਘੰਟੇ ਦੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਵਿਚ ਵੱਧ ਤੋਂ ਵੱਧ 12 ਮਿੰਟ ਦਾ ਹੀ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੇਣਗੇ ਪਰ ਹੁਣ ਤਾਂ ਅਜਿਹੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਚੈਨਲ ਜਿਵੇਂ **Homeshop 18, Naptol, Gemporia, Shop CJ** ਆਦਿ ਚਲ ਰਹੇ ਹਨ, ਜਿੱਥੇ 24 ਘੰਟੇ ਸਿਰਫ਼ ਵਿਗਿਆਪਨ ਹੀ ਦਿਖਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਜੋ ਦੇਖਣ ਵਾਲਿਆਂ ਦੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਦਰਅਸਲ ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ 'ਚ ਵਿਗਿਆਪਨ ਸਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਵਿਚ ਬਿਨਾਂ ਸਾਡੀ ਮਰਜ਼ੀ ਦੇ ਦਖ਼ਲ-ਅੰਦਾਜ਼ੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਸਗੋਂ ਸਾਡੀ ਨਿੱਜੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਵੀ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਸਵਾਲ ਇਹ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕੋਈ ਸਾਡੀ ਮਰਜ਼ੀ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਸਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਜਾਂ ਸਾਡੀ ਨਿੱਜੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿਚ ਦਖ਼ਲ-ਅੰਦਾਜ਼ੀ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ? ਅਸੀਂ ਕਿਵੇਂ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੇਖ ਕੇ ਕੋਈ ਵਸਤੂ ਖਰੀਦਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਾਂ? ਬਹੁਤੀ ਵਾਰ ਸਾਨੂੰ ਕਿਸੇ ਵਸਤੂ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਪਰ ਲਗਾਤਾਰ ਉਸ ਬਾਰੇ ਦੇਖ/ਸੁਣ ਕੇ ਸਾਨੂੰ ਉਸ ਵਸਤੂ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਮਹਿਸੂਸ ਹੋਣ ਲੱਗ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਬੌਰਦੀਲਾਰਦ ਅਜਿਹੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਜਾਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਲਈ 'ਗਿਜ਼ਮੋ' ਸ਼ਬਦ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। 'ਗਿਜ਼ਮੋ' ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਸਾਡੀਆਂ ਬੇਲੋੜੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਜਿਹਨਾਂ ਨੂੰ ਮੀਡੀਆ ਪੂਰੀਆਂ ਕਰਨ ਦਾ ਹੱਲ ਵੀ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਆਰਥਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਮਜ਼ਬੂਤ ਵਿਕਸਿਤ ਦੇਸ਼ਾਂ 'ਚ ਗਿਜ਼ਮੋ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਗਿਜ਼ਮੋ ਬਾਜ਼ਾਰ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀ ਹੋਈ ਅਜਿਹੀ ਸ਼ੈਅ ਹੈ ਕਿ ਜੋ ਸਾਨੂੰ ਸਾਡੀਆਂ ਬੁਨਿਆਦੀ ਲੋੜਾਂ ਤੋਂ ਦੂਰ ਲੈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਗਿਜ਼ਮੋ ਦੀ ਖਾਸੀਅਤ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਜਿਹੜੀ ਵਸਤੂ 2017 ਵਿਚ ਉੱਤਮ ਹੈ, ਫ਼ੈਸ਼ਨ ਵਿਚ ਹੈ, 2018 ਵਿਚ ਉਹੀ ਫ਼ੈਸ਼ਨ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਬੰਦਾ ਲੋੜ, ਫਿਰ ਲੋੜ ਤੇ ਹੋਰ ਲੋੜ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦੇ ਰਾਹੇ ਪਿਆ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ।

ਅਸਲ ਵਿਚ ਰੋਟੀ, ਕੱਪੜਾ, ਮਕਾਨ ਅਤੇ ਮੈਡੀਕਲ ਸਹੂਲਤਾਂ ਸਾਰੀਆਂ ਬੁਨਿਆਦੀ ਲੋੜਾਂ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਤਦ ਵੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਸੀ ਜਦ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦਾ ਯੁੱਗ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਅੱਜ ਇਹਨਾਂ ਵਸਤਾਂ ਨੂੰ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਨੇ ਬਾਜ਼ਾਰੀਕਰਨ ਦਾ ਰੂਪ ਦੇ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਅਸੀਂ ਇਕ ਵਿਗਿਆਪਨ ਨੂੰ ਵਾਰ-ਵਾਰ ਲੰਮੇ ਸਮੇਂ ਤੱਕ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਵਿਗਿਆਪਨ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਦੀ ਇੱਛਾ ਪੂਰੀ ਹੋਣ ਦੀ ਸੰਭਾਵਨਾ ਵਧ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾ ਹੁੰਦਾ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਵੀ ਕੰਪਨੀ ਨੂੰ ਵਿਗਿਆਪਨ 'ਤੇ ਐਨਾ ਜ਼ਿਆਦਾ ਪੈਸਾ ਖਰਚ ਕਰਨ ਦੀ ਲੋੜ ਨਾ ਹੁੰਦੀ। ਵਸਤ ਵੇਚਣ ਵਾਲੇ ਜਿੰਨਾ ਪੈਸਾ ਕਿਸੇ ਚੀਜ਼ ਦੇ ਉਤਪਾਦਨ 'ਤੇ ਖਰਚ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਉਸ ਦਾ ਘੱਟੋ-ਘੱਟ 50% ਉਸ ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਉੱਤੇ ਖਰਚ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ 'ਚ ਕੰਪਨੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਖਾਸ ਡਿਜ਼ਾਇਨ ਨਾਲ ਤਿਆਰ ਕੀਤੇ ਘਰਾਂ ਨੂੰ ਬਣਾ ਕੇ ਵੇਚਣ ਲਈ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਬਿਸਲੇਰੀ, ਕਿੰਨਲੇ, ਹਿਮਾਲਿਆ ਪਾਣੀ ਆਦਿ ਨੂੰ ਵੇਚਣ ਲਈ ਵਿਗਿਆਪਨ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਤਨ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਾਫ਼-ਸੁਥਰੇ ਕੱਪੜਿਆਂ ਨਾਲ ਢਕਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਪਰ ਗੁੱਚੀ, ਟੌਮੀ, ਅਰਮਾਨੀ ਬਰਾਂਡ ਦੇ ਕੱਪੜਿਆਂ ਨੂੰ ਵੇਚਣ ਲਈ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੁਆਰਾ ਸਾਡੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਨੂੰ ਪੈਦਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਦਾ ਸਿਸਟਮ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਤੁਸੀਂ ਇਕ ਚੀਜ਼ ਖਰੀਦਦੇ ਹੋ ਤਾਂ ਉਸ ਨਾਲ ਹੋਰ ਵਸਤਾਂ ਵੀ ਖਰੀਦਣੀਆਂ ਪੈ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਜਿਵੇਂ ਸ਼ਾਹਰੁਖ ਖਾਨ ਘਰ ਨੂੰ ਵਧੀਆ ਰੰਗ ਕਰਨ ਦਾ ਵਿਗਿਆਪਨ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਉਹ ਪੁਰਾਣੇ ਘਰ ਤੋਂ ਨਵੇਂ ਰੰਗ ਕੀਤੇ ਘਰ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਦੇ ਕੱਪੜੇ ਆਪਣੇ-ਆਪ ਬਦਲ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਦਾ ਭਾਵ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਤੁਸੀਂ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਕਾਨ ਵਿਚ ਰਹਿਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹੋ ਜਾਂ ਰਹਿੰਦੇ ਹੋ ਤਾਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਕੱਪੜੇ ਵੀ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਬਰੈਂਡਡ ਹੀ ਪਾਉਣੇ ਪੈਣਗੇ। ਮੀਡੀਆ ਬਾਜ਼ਾਰ ਨੂੰ ਮੁਨਾਫ਼ੇ ਦੇਣ ਲਈ ਵਸਤਾਂ ਨੂੰ ਸਿੱਧੇ ਜਾਂ ਅਸਿੱਧੇ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਜੋੜ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਇਕ ਵਿਗਿਆਪਨ ਰਾਹੀਂ ਦੋ ਜਾਂ ਦੋ ਤੋਂ ਵਧੇਰੇ ਵਸਤਾਂ ਦੀ ਵਿਕਰੀ ਹੋ ਸਕੇ। ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਕੇ ਜਿੱਥੇ ਟੀ. ਵੀ. ਚੈਨਲ, ਰੇਡੀਓ ਅਤੇ ਹੋਰ ਇਸ ਦੇ ਜਨ-ਸੰਚਾਰ ਸਾਧਨ ਚੋਖਾ ਪੈਸਾ ਕਮਾ ਰਹੇ ਹਨ ਉੱਥੇ ਵਸਤਾਂ ਨੂੰ ਬਣਾ ਕੇ ਵੇਚਣ ਵਾਲੀਆਂ ਕੰਪਨੀਆਂ ਵੀ ਮੋਟਾ ਪੈਸਾ ਕਮਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਜਿਵੇਂ ਇਕ ਕਿਸਾਨ ਆਲੂ ਦਾ ਉਤਪਾਦਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਸਨੂੰ ਆਲੂ ਦੀ ਕੀਮਤ ਬਾਜ਼ਾਰ ਵਿਚ 2 ਤੋਂ 4 ਰੁਪਏ ਕਿੱਲੋ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦੀ। ਕਈ ਵਾਰ ਤਾਂ ਮੁਫ਼ਤ 'ਚ ਹੀ ਸੜਕ 'ਤੇ ਸੁੱਟਣੇ ਪੈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਪਰ ਤੁਸੀਂ ਕਦੇ ਲੇਅਜ਼ ਦੇ ਪੈਕਟ ਸੜਕਾਂ ਤੇ ਪਏ ਨਹੀਂ ਦੇਖੇ ਹੋਣੇ। ਦੋ ਰੁਪਏ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਚਾਰ ਰੁਪਏ ਤੱਕ

ਖਰੀਦਿਆ ਆਲੂ ਪੰਜਾਹ ਸੱਠ ਰੁਪਏ ਕਿਲੋ ਵਿਚ ਵੇਚ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਫ਼ਰਕ ਸਿਰਫ਼ ਏਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਬਾਜ਼ਾਰ ਆਲੂ ਦਾ ਬਾਜ਼ਾਰੀਕਰਨ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਤੁਹਾਨੂੰ ਉਹ ਚੀਜ਼ ਖਰੀਦਣ ਦੀ ਇੱਛਾ ਪੈਦਾ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।

ਭਾਰਤ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਮੁਲਕ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਰਾਜ ਦਾ ਚੌਥਾ ਥੰਮ੍ਹ ਮੰਨੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਪ੍ਰੈੱਸ ਦਾ ਆਗਾਜ਼, ਮੁਲਕ ਦੀ ਆ-ਜ਼ਾਦੀ ਦੇ ਮਿਸ਼ਨ ਵਜੋਂ ਹੋਇਆ ਸੀ ਪਰ ਆਧੁਨਿਕ ਸਮੇਂ ਵਿਚਲੇ ਖਪਤ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਨੇ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਪਕੜ ਵਿਚ ਲੈ ਲਿਆ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਜਿੱਥੇ ਹਰ ਬੰਦਾ ਕੋਈ ਨਾਂ ਕੋਈ ਸਮੱਸਿਆ ਨਾਲ ਜੂਝ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਅਜਿਹੇ ਸਮੇਂ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਵਿਗਿਆਪਨ 101% ਕੰਮ ਦੀ ਗਰੰਟੀ ਤੇ ਫੀਸ ਕੰਮ ਹੋਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਦਾ ਦਾਅਵਾ ਕਰਦੇ ਹਨ ਪਰ ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ਵਿਗਿਆਪਨ ਪੰਜਾਬੀ ਦੀ ਕਹਾਵਤ ਕਿ, ਹਾਥੀ ਦੇ ਦੰਦ ਖਾਣ ਨੂੰ ਹੋਰ ਤੇ ਦਿਖਾਉਣ ਨੂੰ ਹੋਰ ਵਰਗੇ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।'ਵਿਗਿਆਪਨ ਕਲਾ, ਜਿਸਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਅਸ਼ੋਕਾ ਨੇ ਜਦੋਂ ਬੁੱਧ ਧਰਮ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਚਾਰਨ ਵਜੋਂ ਕੀਤੀ ਸੀ ਓਦੋਂ ਉਹ ਸਮਾਂ ਸੀ ਜਦ ਸੂਚਨਾ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ ਵਿਚਕਾਰ ਸਿਰ ਦੇ ਵਾਲ ਜਿੰਨੀ ਵੀ ਵਿੱਥ ਨਹੀਂ ਸੀ ਹੁੰਦੀ।'[4] ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਬਹੁਤ ਤਬਦੀਲੀ ਆ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਅੱਜ ਕੰਪਨੀਆਂ ਆਪਣੇ ਮੁਨਾਫੇ ਲਈ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ਉਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਬਹੁਤ ਘੱਟ ਹੀ ਮਿਲਦੀਆਂ ਹਨ।

ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਅੱਜ ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ 'ਚ ਸਟੇਟਸ ਦੀ ਬਿਰਤੀ ਪੈਦਾ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਸਾਨੂੰ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਜੋੜ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਨੇ ਸਾਡੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਰਾਹੀ ਕੈਪਚਰ ਕਰ ਲਿਆ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ 'ਚ ਵਸਤਾਂ ਸਿਰਫ਼ ਵਸਤਾਂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਰਹਿ ਗਈਆਂ ਸਗੋਂ ਵਸਤਾਂ ਨਾਲ ਲੱਗਿਆ ਚਿੰਨ੍ਹ ਬੰਦੇ ਦੀ ਪ੍ਰਤਿਸ਼ਠਾ ਨੂੰ ਵੀ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮਸਲਨ ਕਿਸੇ ਬੰਦੇ ਨੇ ਕਿਸ ਬਰੈਂਡ ਦੇ ਕੱਪੜੇ, ਕਿਸ ਬਰੈਂਡ ਦੀ ਘੜੀ, ਜੁੱਤੀ ਆਦਿ ਪਹਿਨੇ ਹਨ। ਬਾਜ਼ਾਰ ਨੇ ਤੁਹਾਨੂੰ ਹਰ ਚੀਜ਼ ਇਕ ਥਾਂ 'ਤੇ ਮੁਹੱਈਆ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ ਸ਼ਾਪਿੰਗ ਮਾਲ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਤੁਸੀਂ ਚਾਹੇ ਇਕ ਵਸਤੂ ਹੀ ਖਰੀਦਣ ਗਏ ਹੋ ਪਰ ਖਰੀਦ ਕੇ ਦੋ ਆਓਗੇ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਨੂੰ ਸਾਡੇ ਘਰਾਂ ਦੇ ਬੈਡਰੂਮਾਂ ਤੱਕ ਲੈ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਬੰਦੇ ਦੀਆਂ ਜ਼ਰੂਰਤਾਂ ਨੂੰ ਪੂਰਾ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਬਾਜ਼ਾਰ ਅੱਜ ਬੰਦੇ ਨੂੰ ਇਕ ਅਜਿਹੀ ਤਬਾਹੀ ਵੱਲ ਲੈ ਕੇ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਆਮ ਵਿਅਕਤੀ ਆਰਥਕ ਮੰਦਵਾੜੇ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਮਾਨਸਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵੀ ਪਰੇਸ਼ਾਨ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਉਹ ਆਪਣਾ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਮਾਨਸਿਕ ਸੰਤੁਲਨ ਕਾਇਮ ਨਹੀਂ ਰੱਖ ਪਾ ਰਿਹਾ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਵਿਗਿਆਪਨ ਪਾਣੀ ਦੀ ਉਸ ਬੂੰਦ ਵਰਗੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਜਿਹੜੀ ਹਰ ਵਕਤ ਪੱਥਰ 'ਤੇ ਪੈਂਦੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਕ ਦਿਨ ਅਜਿਹਾ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਜਦ ਪੱਥਰ ਵਿਚ ਸੁਰਾਖ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕੁਝ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਹੀ ਸਾਡੇ ਨਾਲ ਵੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਵਿਗਿਆਪਨ 'ਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਵਾਰ-ਵਾਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਅਸੀਂ ਉਸ ਵਸਤੂ ਨੂੰ ਖਰੀਦਣ ਲਈ ਮਾਨਸਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਤਿਆਰ ਹੋ ਸਕੀਏ। ਇਹ ਵਿਗਿਆਪਨ ਬਿਨਾ ਕਿਸੇ ਤਰਕ ਦੇ ਸਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਵਿਚ ਭਰੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਕ ਵਾਰ ਜਦੋਂ ਇਹ ਵਿਚਾਰ ਤੁਹਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਵਿਚ ਚਲਾ ਗਿਆ ਤਾਂ ਇਹ ਇਕ ਬਿੰਬ ਬਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸਮੇਂ ਦੇ ਨਾਲ ਅਸੀਂ ਇਹਨਾਂ ਬਿੰਬਾਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਣ ਲੱਗ ਜਾਂਦੇ ਹਾਂ ਜਿਵੇ ਅੱਜ ਇਹ ਦੱਸਣ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਕਿ ਠੰਡਾ ਮਤਲਬ-ਨਾ ਲੱਸੀ ਹੈ, ਨਾ ਸ਼ਕੰਜਵੀ, ਨਾ ਗੰਨੇ ਦਾ ਰਸ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਘੜੇ ਦਾ ਪਾਣੀ। ਠੰਡੇ ਦਾ ਮਤਲਬ ਸਿਰਫ਼ ਕੋਕਾ ਕੋਲਾ ਹੀ ਹੈ ਜੋ ਸਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਵਿਚ ਹੈ।

ਇਹ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦਾ ਹੀ ਨਮੂਨਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਨੂੰ ਪਤਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਲੱਗਿਆ ਕਿ ਕਦੋਂ ਅਸੀਂ ਪਰੌਂਠਿਆਂ ਤੋਂ ਪੀਜ਼ਾ ਤੱਕ, ਦੇਸੀ ਮਿਠਾਈਆਂ ਤੋਂ ਚਾਕਲੇਟ, ਦੁੱਧ ਲੱਸੀ ਤੋਂ ਠੰਡਿਆਂ ਤੱਕ ਦਾ ਸਫ਼ਰ ਕਦ ਤੈਅ ਕਰ ਲਿਆ। ਸਾਡੇ ਤਿਉਹਾਰਾਂ, ਵਿਆਹ ਸ਼ਾਦੀਆਂ ਅਤੇ ਰੀਤੀ ਰਿਵਾਜਾਂ ਵਿਚੋਂ ਸਾਡਾ ਰਵਾਇਤੀ ਪਹਿਰਾਵਾ ਅਤੇ ਰਵਾਇਤੀ ਖਾਣਾ ਕਦੋਂ ਦਾ ਦੂਰ ਹੋ ਗਿਆ। ਬੇਸ਼ੱਕ ਪਰਿਵਰਨ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਨਿਯਮ ਹੈ ਤੇ ਇਥੇ ਹਰ ਚੀਜ਼ ਦਾ ਬਦਲਣਾ ਤੈਅ ਹੈ ਪਰ ਸਾਨੂੰ ਆਪਣੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨੂੰ ਬਚਾ ਕੇ ਅਤੇ ਆਉਣ ਵਾਲੀਆ ਪੀੜ੍ਹੀਆਂ ਲਈ ਸੰਭਾਲ ਕੇ ਰੱਖਣ ਦੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ। ਰਸੂਲ ਹਮਜ਼ਾਤੋਵ ਦਾ ਕਥਨ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਤੁਸੀਂ ਬੀਤੇ ਤੇ ਪਿਸਤੌਲ ਨਾਲ ਗੋਲੀ ਚਲਾਓਗੇ ਤਾਂ ਭਵਿੱਖ ਤੁਹਾਨੂੰ ਤੋਪ ਨਾਲ ਫੁੰਡ ਦੇਵੇਗਾ।

ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਤੁਹਾਡੀ ਜੇਬ ਤੱਕ ਬਣਾ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਤੁਸੀਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਨਾਲ ਚੌਵੀ ਘੰਟੇ ਜੁੜੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹੋ ਅਤੇ ਤੁਹਾਨੂੰ ਜਦ ਵੀ ਕਿਸੇ ਵੀ ਵਸਤੂ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ ਤਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਉਹ ਤੁਹਾਡੇ ਕੋਲ ਪਹੁੰਚਦੀ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਸਨੈਪਡੀਲ, ਫਲਿਪਕਾਰਟ, ਐਮਾਜ਼ੋਨ ਆਦਿ ਅਜਿਹੀਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਸੋਸ਼ਲ ਐਪਜ਼ ਜਾਂ ਸਾਈਟਸ ਹਨ ਜਿਹੜੀਆਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਹਰ ਵਕਤ ਆਪਣੇ ਨਾਲ ਜੋੜੀ ਰੱਖਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਥੋ ਤੱਕ 1mg ਵਰਗਾ ਐਪ ਤੁਹਾਨੂੰ ਘਰ ਬੈਠੇ ਦਵਾਈਆਂ ਮੁਹੱਈਆ ਕਰਵਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਫੇਸਬੁੱਕ ਵਰਗੀਆਂ ਸੋਸ਼ਲ ਐਪਸ ਵੀ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਨੂੰ ਹਰ ਆਮ ਖ਼ਾਸ ਬੰਦੇ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਬਣਦਾ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।ਅੱਜ ਉਪਭੋਗਤਾ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਨੇ ਮਹਿਲਾਵਾਂ ਦੇ ਲਈ ਘਰ-ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀ ਉਸਦੀ ਸੋਚ ਵਿਚ ਵਿਆਪਕ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਿਆਉਂਦਾ ਹੈ ਪਰ ਆਧੁਨਿਕ ਵਪਾਰੀ ਆਪਣੇ ਮਨੋਰਥ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਜਿਸ ਚੀਜ਼

ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਦੁਰਵਰਤੋਂ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ-ਉਹ ਹੈ ਔਰਤ। ਮੀਡੀਆ, ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਤੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਇਕ ਵਸਤ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ 'ਜੋ ਦਿਖਤਾ ਹੈ ਵਹੀ ਬਿਕਤਾ ਹੈ' ਜਿਹੀ ਧਾਰਨਾ ਤਹਿਤ ਵੱਧ ਤੋਂ ਵੱਧ ਵਿਕਰੀ ਲਈ ਬਾਜ਼ਾਰ ਤਿਆਰ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਹ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੈ ਕਿ ਕੋਈ ਅੱਛੀ ਚੀਜ਼ ਪੜ੍ਹਨਾ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦਾ, ਪੂਰਾ ਸਮਾਜ ਭੋਗਵਾਦ ਦੀ ਲਪੇਟ ਵਿਚ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜੋ ਸਿਰਫ਼ ਖਾਓ, ਪੀਓ ਅਤੇ ਮੌਜ ਕਰੋ ਦੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਹੀ ਅਜਿਹਾ ਮਾਧਿਅਮ ਹੈ ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਅਸੰਭਵ ਨੂੰ ਸੰਭਵ ਕਰਕੇ ਦਿਖਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਵੇਂ ਟੀ.ਵੀ. 'ਤੇ ਇਕ ਵਿਗਿਆਪਨ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਕ ਚਿੱਕੜ੍ਹ ਵਿਚ ਫਸੇ ਟਰੱਕ ਨੂੰ 10 ਬੰਦੇ ਵੀ ਖਿੱਚ ਕੇ ਬਾਹਰ ਨਹੀਂ ਕੱਢ ਪਾਉਂਦੇ ਪਰ ਇਕ ਲੰਮੇ ਵਾਲਾਂ ਵਾਲੀ ਉਸਨੂੰ ਬਾਹਰ ਕੱਢ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਦਰਅਸਲ ਇਸ ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚ ਦਿਖਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਸੰਬੰਧਤ ਸ਼ੈਂਪੂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਨਾਲ ਵਾਲ ਇੰਨੇ ਮਜ਼ਬੂਤ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਕਿ ਉਸ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਕੁਝ ਵੀ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਉਤਪੱਤੀ ਜਿਸ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਹੋਈ ਅਤੇ ਅੱਜ ਜਿਸ ਦੌਰ 'ਚ ਮੀਡੀਆ ਗੁਜ਼ਰ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਉਸ 'ਚ ਕਾਫ਼ੀ ਅੰਤਰ ਹੈ।ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਰੋਲ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਕਾਫ਼ੀ ਵੱਧ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਜਿਸ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਗਿਆਨ, ਵਿਗਿਆਨ ਅਤੇ ਸੂਚਨਾ ਨੂੰ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣ ਲਈ ਹੋਈ ਸੀ ਅੱਜ ਇਸ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਵਿਚ ਪਈ ਹਰ ਵਸਤੂ ਨੂੰ ਵੇਚਣ ਲਈ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਅੱਜ ਮੀਡੀਆ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੇ ਆਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਵਿਚਾਰ ਬਦਲਣ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਬਣਾਉਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਚੋਣਾਂ ਸਮੇਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਚੋਣਾਂ ਦੇ ਨਤੀਜੇ ਬਦਲਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦੇ ਹਨ।ਅੱਜ ਮੀਡੀਆ ਜੇਕਰ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀ ਸਿਰਫ਼ ਜ਼ਰੂਰਤ ਨੂੰ ਹੀ ਪੂਰਾ ਨਾ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਗਿਆਨ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਸਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਵਿਚ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਸਮਾਜ ਲਈ ਉਸਾਰੂ ਸ਼ਕਤੀ ਬਣ ਕੇ ਦੇਸ਼ ਅਤੇ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਸ਼ਤੀਸ਼ਲੀ, ਸਮਰੱਥ ਅਤੇ ਸੋਹਣਾ ਬਣਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

## ਹਵਾਲੇ


1. ਡਾ. ਰਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਪਾਸਾਰ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਪਹਿਚਾਣ ਦੇ ਮਸਲੇ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ, (ਸੰਪਾ.) ਡਾ. ਜਸਬੀਰ ਕੌਰ, ਪਬਲਿਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਨਾ-185 ।
2. ਗੁਰਮੀਤ ਸਿੰਘ, ਮੀਡੀਆ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ, ਖੋਜ ਦਰਪਣ, ਜਿਲਦ 31, ਪੰਜਾਬੀ ਅਧਿਐਨ ਸਕੂਲ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2008, ਪੰਨਾ-117
3. ਰਾਜਿੰਦਰਪਾਲ ਸਿੰਘ ਬਰਾੜ (ਮੁੱਖ ਸੰਪਾ.), ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ: ਅੰਤਰ ਸੰਵਾਦ, ਪਬਲਿਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪਟਿਆਲਾ, 2011, ਪੰਨਾ-ੜੀ
4. ਡਾ. ਭੁਪਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਬੱਤਰਾ ਅਤੇ ਵਿਕਰਮ ਸਿੰਘ, ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਮਾਇਆਜਾਲ, ਗਰੇਸ਼ਿਅਸ਼ ਬੁਕਸ, ਪਟਿਆਲਾ, 2017, ਪੰਨਾ-101

# ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ-ਇੱਕ ਸਰਵੇਖਣ

- ਡਾ. ਵਿਨਾਕਸ਼ੀ ਸ਼ਰਮਾ

ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ, ਭਾਰਤੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਨਾਲੋਂ ਉਮਰ ਵਿੱਚ ਲਗਭਗ ਇੱਕ ਸੌ ਸਾਲ ਛੋਟੀ ਹੈ, ਭਾਰਤੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੀ ਉਮਰ ਤੋਂ ਅੱਧੀ। ਭਾਰਤ ਦਾ ਪਹਿਲਾਂ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਬੰਗਾਲ ਗਜ਼ਟ' 21 ਜਨਵਰੀ 1780 ਨੂੰ ਕਲੱਕਤਾ ਤੋਂ ਛਪਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ, ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਪੱਤਰ 'ਗੁਰਮੁਖੀ ਅਖ਼ਬਾਰ' ਜੋ ਹਫਤਾਵਾਰ ਸੀ, 10 ਨਵੰਬਰ 1880 ਨੂੰ ਲਾਹੌਰ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ। ਲਿੱਥੋ ਪ੍ਰੈਸ (ਪੱਥਰ ਦੇ ਛਾਪੇ) 'ਤੇ ਛਪਦੇ ਇਸ ਸਪਤਾਹਿਕ ਦੇ ਸੰਪਾਦਕ, ਓਰੀਐਂਟਲ ਕਾਲਜ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਅਧਿਆਪਕ, ਭਾਈ ਗੁਰਮੁਖ ਸਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਜਨਮ ਸਥਾਨ ਲਾਹੌਰ ਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੇ ਜਨਮਦਾਤਾ ਭਾਈ ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਕਹੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ।

ਹਾਲਾਂਕਿ ਇਸ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ 1867 ਵਿੱਚ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਤੋਂ ਗੁਰਮੁਖੀ ਲਿਪੀ ਵਿੱਚ ਪਹਿਲਾ ਪੱਤਰ 'ਅਖ਼ਬਾਰ ਸ੍ਰੀ ਦਰਬਾਰ ਸਾਹਿਬ' ਇਸਾਈ ਮਿਸ਼ਨਰੀਆਂ ਜੋ ਪੰਜਾਬੀ ਛਾਪਾਖਾਨਾ 1850ਵਿਆਂ ਵਿੱਚ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਲੁਧਿਆਣਾ ਲੈ ਕੇ ਆਏ, ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋ ਕੇ ਮੁਨਸ਼ੀ ਹਰੀ ਨਰਾਇਣ ਤੇ ਫਰਾਹਿਆ ਲਾਲ ਨੇ ਕੱਢਿਆ, ਪਰ ਇਹ ਗੁਰਮਖੀ ਲਿਪੀ ਵਿੱਚ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਇਸ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਸ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਮੋਢੀ ਨਹੀਂ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ।

ਉਰਦੂ-ਹਿੰਦੀ ਦੇ ਮਿਲਗੋਭੇ ਨੂੰ ਗੁਰਮੁਖੀ ਵਿੱਚ ਛਾਪਣ ਕਾਰਨ ਇਸ ਨੂੰ ਗੁਰਮੁਖੀ ਲਿਪੀ ਵਿੱਚ ਛਪਣ ਵਾਲਾ ਹਿੰਦੀ-ਉਰਦੂ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਅਖ਼ਬਾਰ ਤਾਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ, ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਗੁਰਮੁਖੀ ਲਿਪੀ ਵਿੱਚ ਛਪਣ ਵਾਲਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ ਨਹੀਂ। ਹਾਂ ਜੇ ਇਸ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਪੰਜਾਬੀ ਤੇ ਲਿਪੀ ਦੇਵਨਾਗਰੀ ਹੁੰਦੀ ਤਾਂ ਸ਼ਾਇਦ ਇਸ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਪਰਚਾ ਹੋਣ ਦਾ ਮਾਣ ਮਿਲ ਜਾਂਦਾ।

ਉਨੀਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਅਖੀਰ ਤੱਕ 'ਗੁਰਮੁਖੀ ਅਖ਼ਬਾਰ' ਪਿੱਛੋਂ 17 ਹੋਰ ਅਖ਼ਬਾਰ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ ਨਿਕਲਣੇ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਏ ਜੋ ਥੋੜ੍ਹੇ ਜਿਹੇ ਸਮੇਂ 'ਚ ਹੀ ਸਾਲ ਦੋ ਸਾਲ ਚੱਲ ਕੇ ਬੰਦ ਹੋ ਗਏ। 'ਗੁਰਮੁਖੀ ਅਖ਼ਬਾਰ' 1883 ਤੋਂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲਹਿਰ ਦੀ ਸਰਪ੍ਰਸਤੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ 1888 ਦੇ ਅਖੀਰ ਤੱਕ ਸ਼ਾਨੋ-ਸ਼ੌਕਤ ਨਾਲ ਚਲਦਾ ਰਿਹਾ, ਪਰ ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਵੱਲੋਂ ਹੀ 1881 ਵਿੱਚ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤੇ ਆਪਣੇ ਮਾਸਿਕ ਪੱਤਰ 'ਵਿਦਿਆਰਕ' ਤੇ ਫਿਰ 1886 ਵਿੱਚ 'ਸੁਧਾਰਕ' ਤੇ ਇਸੇ ਸਾਲ ਹੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ ਸਪਤਾਹਿਕ 'ਖਾਲਸਾ ਗਜ਼ਟ' ਲੰਮੇ ਸਮੇਂ ਤੱਕ ਨਾ ਚੱਲ ਸਕੇ। ਇਹੋ ਹਸ਼ਰ ਖਾਲਸਾ ਅਖ਼ਬਾਰ, ਗੁਰਮਤਿ ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਗਜ਼ਟ, ਸੁਧਾਰ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾ, ਨਿਰਗੁਣਿਆਰਾ, ਅਮਰ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾ ਦਾ ਹੋਇਆ ਜਦਕਿ ਖਾਲਸਾ ਸਮਾਚਾਰ ਇਨ੍ਹਾਂ 'ਚੋਂ ਫਿਰ ਵੀ ਬਿਹਤਰ ਰਿਹਾ। ਸੰਨ 1873 ਵਿੱਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲਹਿਰ ਪਿੱਛੋਂ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਅਕਾਲੀ ਲਹਿਰ ਸਮੇਤ ਕੁਝ ਹੋਰ ਲਹਿਰਾਂ ਵੀ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਰਾਹੀਆਂ।

ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਅਸਲ ਉਥਾਨ 1900 ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 1930 ਮੰਨਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਿਭਿੰਨ ਲਹਿਰਾਂ ਦਾ ਅਸਰ ਰਿਹਾ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਰਕਾਰ ਵਿਰੋਧੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸੀਚਿਆ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਤੇ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਤਾਦਾਦ ਵਿੱਚ ਇਜ਼ਾਫਾ ਕੀਤਾ। ਮਾਇਕ ਸਾਧਨਾਂ ਦੀ ਥੁੜ੍ਹ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪੜ੍ਹਨ ਵਾਲਿਆਂ ਦਾ ਘੇਰਾ ਸੀਮਤ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਤੇ ਵਰਗਾਂ ਬਾਰੇ ਅਖ਼ਬਾਰ ਛਪੇ ਜੋ ਉਤਸੁਕਤਾ ਨਾਲ ਪੜ੍ਹੇ ਜਾਂਦੇ ਰਹੇ। ਰਾਜਸੀ ਮਨੋਰਥ ਪੂਰਤੀ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਇਸ ਕਾਲ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਨੇ ਸਾਹਿਤਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਵੀ ਕਈ ਨਵੀਆਂ ਸੀਮਾਵਾਂ ਛੋਹੀਆਂ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਕਈ ਚੰਗੇ ਗੱਦਕਾਰ, ਹਾਸ-ਲੇਖਕ, ਕਵੀ, ਕਹਾਣੀਕਾਰ, ਵਿਅੰਗਕਾਰ ਮਾਂ-ਬੋਲੀ ਦੀ ਝੋਲੀ ਪੁਆਏ।

ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਬਿਗਾਨੀ ਧਰਤੀ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ ਨਿਕਲਣ ਵਾਲਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਰਸਾਲਾ 'ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਗ਼ਦਰ' ਸੀ। ਸੰਨ 1913 ਵਿੱਚ ਸੈਨਫਰਾਂਸਿਸਕੋ (ਅਮਰੀਕਾ) ਤੋਂ ਕੱਢੇ ਗਏ ਇਸ ਪਰਚੇ ਵਿੱਚ ਲਾਲਾ ਹਰਦਿਆਲ, ਮੌਲਵੀ ਬਰਕਤ ਉਲ੍ਹਾ ਤੇ ਭਗਵਾਨ ਸਿੰਘ ਪ੍ਰੀਤਮ ਵਰਗੀਆਂ ਸ਼ਖ਼ਸ਼ੀਅਤਾਂ ਸਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਤੋਂ ਤਰਜ਼ਮਾ ਹੋ ਕੇ ਇਹ ਅੱਠ ਜ਼ੁਬਾਨਾਂ 'ਚ ਛਪਦਾ ਸੀ। 1949 ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇਹੋ ਪਰਚਾ ਲਾਸ ਏਂਜਲਸ ਤੋਂ 'ਨਵਾਂ ਯੁਗ' ਦੇ ਨਾਂਅ ਨਾਲ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਨਿਕਲਦਾ ਰਿਹਾ।

ਦਰਅਸਲ 1947 'ਚ ਹੋਈ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਦੀ ਦਰਦਨਾਕ ਤਕਸੀਮ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਵਾਲਾ ਪੰਜਾਬ ਮੁਸਲਿਮ ਬਹੁਮਤ

ਵਾਲਾ ਰਾਜ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਉਥੇ ਉਰਦੂ-ਫਾਰਸੀ ਦੀ ਚੜ੍ਹਤ ਰਹੀ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ, ਮੁਲਕ ਦੀਆਂ ਦੂਜੀਆਂ ਜ਼ੁਬਾਨਾਂ ਮਰਾਠੀ, ਹਿੰਦੀ, ਬੰਗਲਾ, ਤਾਮਿਲ ਨਾਲੋਂ ਤਕਰੀਬਨ ਇੱਕ ਸਦੀ ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ।

ਮੌਜੂਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਆਗਾਜ਼ 15 ਅਗਸਤ 1947 ਨੂੰ ਦੇਸ਼ ਦੀ ਵੰਡ ਪਿੱਛੋਂ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਅੰਗਰੇਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਆਜ਼ਾਦ ਹੋ ਜਾਣ ਨਾਲ, ਬਾਕੀ ਬਚੇ ਰਹਿ ਗਏ ਪੂਰਬੀ ਪੰਜਾਬ 'ਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ। ਅਸਲ ਵਿੱਚ ਉਰਦੂ-ਫਾਰਸੀ ਦੇ ਬੋਲਬਾਲੇ ਨੂੰ ਦਰਕਿਨਾਰ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨੂੰ ਸਕੂਲ ਪੜ੍ਹਾਈ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ 1950 ਵਿੱਚ ਬਣਾਇਆ ਗਿਆ, ਜਿਸ ਨਾਲ ਸਾਡੀ ਮਾਂ-ਬੋਲੀ ਪੰਜਾਬੀ 'ਚ ਗੁਰਮੁਖੀ ਲਿਪੀ ਜ਼ਰੀਏ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨ ਚੜ੍ਹਨ 'ਤੇ ਪ੍ਰਫੁਲਿਤ ਹੋਣ ਦੇ ਰਾਹ ਮੋਕਲੇ ਹੋਏ।

ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਸ਼ੁਰੂ ਹੀ ਇੱਥੋਂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉਹਦਾ ਸਰਵਪੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਹੋਣਾ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ।ਖ਼ੁਦਮੁਖ਼ਤਿਆਰ ਅਖ਼ਬਾਰੀ ਅਦਾਰੇ ਸਥਾਪਤ ਹੋ ਜਾਣ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ ਸਾਡੇ ਚੜ੍ਹਦੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ 1950ਵੇਂ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਪੈਰ ਜਮਾਉਣ ਲੱਗੇ। ਇਨ੍ਹਾਂ 'ਚ ਪੰਥ ਸੇਵਕ, ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਰਣਜੀਤ, ਅਕਾਲੀ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਹਨ। ਸਾਹਿਤਕ ਮਾਸਕ ਪੱਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਫੁਲਵਾੜੀ (1924) ਪ੍ਰੀਤਲੜੀ (1933) ਪੰਜਾਬ ਦਰਿਆ ਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਚਰਚਾ ਸੀ।

ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਪੱਤਰਾਂ 'ਚ 'ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਅਜੀਤ' ਸਭ ਤੋਂ ਮੋਹਰੀ ਰਿਹਾ। ਉਰਦੂ ਸਪਤਾਹਿਕ 'ਅਜੀਤ' ਲਹਿੰਦੇ ਪੰਜਾਬ ਅੰਦਰ ਰਹਿ ਗਏ ਲਾਹੌਰ ਤੋਂ 1914 'ਚ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ ਸੀ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਅਗਲੇ ਸਾਲ ਹੀ 1942 ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਤੋਂ 'ਅਜੀਤ ਉਰਦੂ ਰੋਜ਼ਾਨਾ' ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਮੁਲਕ ਦੀ ਵੰਡ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇਸ ਨੂੰ ਅਮਰ ਸਿੰਘ ਦੁਸਾਂਝ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧਕੀ ਨਿਰਦੇਸ਼ਨ ਹੇਠ ਜਲੰਧਰ ਤੋਂ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਸੰਨ 1955 ਵਿੱਚ ਇਸ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ (ਗੁਰਮੁਖੀ) ਵਿੱਚ 'ਅਜੀਤ ਪੱਤ੍ਰਿਕਾ' ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਤੇ 1959 ਵਿੱਚ ਇਹ ਪੰਜਾਬੀ 'ਅਜੀਤ' ਦੇ ਨਾਂਅ ਹੇਠ ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਅਤੇ ਸੰਪਾਦਕ ਹੇਠ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਹੋਣ ਲੱਗਾ।

ਇਸੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਤੋਂ ਉਠ ਕੇ ਚੜ੍ਹਦੇ ਪੰਜਾਬ ਅੰਦਰ ਜਲੰਧਰ ਵਿੱਚ ਹੀ ਆਰੀਆ ਸਮਾਜੀ 'ਮਹਾਸ਼ਾ ਪ੍ਰੈਸ' ਵੀ ਸਥਾਪਤ ਹੋ ਗਈ। ਹਿੰਦ ਸਮਾਚਾਰ ਗਰੁੱਪ ਨੇ ਉਰਦੂ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬ ਕੇਸਰੀ ਹਿੰਦੀ ਅਖ਼ਬਾਰ ਜਲੰਧਰ ਤੋਂ ਕੱਢ ਲਿਆ ਤੇ ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਅਜੀਤ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ 'ਜਗਬਾਣੀ' ਅਗਸਤ 1978 ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਮੋਹਰੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ। ਇਸ ਦੇ ਬਾਨੀ ਸੰਪਾਦਕ ਲਾਲਾ ਜਗਤ ਨਰਾਇਣ ਸਨ। ਇਸ ਅਖ਼ਬਾਰ ਨਾਲ ਇੱਕ ਗੈਰ ਸਿੱਖ ਸੰਸਥਾ ਵੱਲੋਂ ਪੰਜਾਬੀ (ਗੁਰਮੁਖੀ) ਦਾ ਅਖ਼ਬਾਰ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਕਰਨ ਦੀ ਪਿਰਤ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ।

ਮੁਲਕ ਦੀ ਤਕਸੀਮ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਲਾਹੌਰ ਤੋਂ ਛਪਦਾ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਦਿ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ' ਇਧਰਲੇ ਪੰਜਾਬ ਅੰਦਰ ਬਰਾਸਤਾ ਅੰਬਾਲਾ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ ਵਿੱਚ ਸਥਾਪਤ ਹੋ ਗਿਆ ਤੇ ਇਸ ਅਖ਼ਬਾਰ ਸਮੂਹ ਨੇ ਵੀ ਆਪਣਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ' 15 ਅਗਸਤ 1978 ਨੂੰ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਇਹ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਅਖ਼ਬਾਰ ਹੈ ਜਿਹੜਾ 'ਹਿੰਦੂ-ਸਿੱਖ' ਵਰਗ ਵਲਗਣਾ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਇੱਕ ਟਰੱਸਟ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਹੇਠ ਕੱਢਿਆ ਗਿਆ ਤੇ ਸ਼ੁਰੂ ਤੋਂ ਹੀ ਜਿਸ ਦੀ ਇੱਕ ਵਿਲੱਖਣ ਦਿਖ ਤੇ ਕੰਟੈਂਟ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਕਮਾਲ ਇਹ ਰਿਹਾ ਕਿ ਜਲੰਧਰ ਤੋਂ ਛਪਣ ਵਾਲੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਅਜੀਤ ਦੇ ਮੁੱਖ ਮਾਲਕ ਸੰਪਾਦਕ ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮ-ਦਰਦ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ 'ਚ ਉਨ੍ਹਾ ਦੇ ਆਪਣੇ ਹੀ ਸਪੁੱਤਰ ਬਰਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਸਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਕੁਝ ਅਣਚਾਹੇ ਕਾਰਨਾਂ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਅਖ਼ਬਾਰ ਦੀ ਬਜਾਇ ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ ਦੇ ਬਾਨੀ ਸੰਪਾਦਕ ਵਜੋਂ ਸੇਵਾਵਾਂ ਦੇ ਕੇ 'ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ' ਨੂੰ ਚੱਲਣ-ਚਲਾਉਣ ਦੀ ਜਾਚ ਸਿਖਾਈ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਨੂੰ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਦੀ 'ਹਿੱਕ' ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਲਿਆ ਖੜ੍ਹਾ ਕੀਤਾ। ਸਿੱਖ ਭਾਈਚਾਰੇ ਵਿਚਲੇ ਧਾਰਮਿਕ ਵਖਰੇਵੇਂ ਤੇ ਅੰਦਰੂਨੀ ਲੜਾਈ ਦੀ ਵਜ੍ਹਾ ਨਾਲ ਤਕਰੀਬਨ ਦੋ ਦਹ-ਾਕਿਆਂ ਤੋਂ ਮੋਹਾਲੀ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਸਪੋਕਸਮੈਨ' ਤੇ ਉਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਜਲੰਧਰ ਤੋਂ ਛਪਦੇ 'ਪੰਜਾਬੀ ਜਾਗਰਣ' ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੇ ਵਿਹੜੇ ਨੂੰ ਹੋਰ ਮੋਕਲਾ ਕਰਦੇ ਆ ਰਹੇ ਹਨ। ਅਰਜਨ ਸਿੰਘ ਗੜਗੱਜ ਫਾਊਂਡੇਸ਼ਨ ਦੇ ਜਲੰਧਰ ਤੋਂ 1952 ਤੋਂ ਛਪਦੇ ਆ ਰਹੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ ਦੇ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਨਵਾਂ ਜ਼ਮਾਨਾ' ਤੇ ਗਿਆਨੀ ਹਰਨਾਮ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪਟਿਆਲਾ ਤੋਂ ਛਪ ਰਹੇ ਚੜ੍ਹਦੀ ਕਲਾ ਬੇਸ਼ਕ ਸਰਕੂਲੇਸ਼ਨ ਪੱਖੋਂ ਘੱਟ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਪੰਜਾਬੀ ਪਾਠਕਾਂ ਲਈ ਬਾਕੀਆਂ ਵਾਂਗ ਘਰ-ਘਰ ਨਹੀਂ ਪਹੁੰਚ ਰਹੇ, ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋਵਾਂ ਦੀ ਹੀ ਘਾਲਣਾ ਨੂੰ ਸਲਾਮ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਘੇਰਾ ਵਿਸ਼ਾਲ ਕਰਨ ਲਈ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਦਾ ਮੱਕੇ-ਮਦੀਨੇ ਵਾਂਗ ਆਸ਼ੀਰਵਾਦ ਦਿੰਦਿਆਂ ਗੌਡ-ਫਾਦਰ ਬਣ ਸਾਥ ਦਿੱਤਾ।

ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਸਿਰਫ਼ ਮੁੱਢਲੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਦੇਣ ਤੱਕ ਹੀ ਸੀਮਤ ਨਹੀਂ, ਇਸ ਦਾ ਮੁੱਢ ਤੋਂ ਹੀ ਸਾਹਿਤ ਨਾਲ ਨੇੜਲਾ ਸੰਬੰਧ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਦੀ ਰਾਜਧਾਨੀ ਦਿੱਲੀ ਵਿੱਚ ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਬੇਸ਼ਕ ਇੱਥੇ ਕੋਈ

ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ ਜਾਂ ਮੈਗਜ਼ੀਨ ਨਹੀਂ ਛਪਦਾ ਸੀ ਪਰ ਤਕਸੀਮ ਤੋਂ ਬਾਅਦ 26 ਜਨਵਰੀ 1950 ਨੂੰ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਖਾਲਸਾ' ਛਪਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ, ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਵੀ ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਏ ਕੁਝ ਸਪਤਾਹਿਕਾਂ/ਮਾਸਿਕਾਂ ਵਾਂਗ ਪੈਰ ਨਾ ਜੰਮ ਸਕੇ ਤੇ ਇਹ ਥੋੜ੍ਹਾ ਸਮਾਂ ਹੀ ਜੀਵਤ ਰਹੇ। ਇਹੋ ਹਸ਼ਰ 1970 ਵਿੱਚ ਰਾਜੌਰੀ ਗਾਰਡਨ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤੀ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਅਖ਼ਬਾਰ 'ਅਭੀਤ' ਦਾ ਹੋਇਆ ਜਿਸ ਤੋਂ ਪ੍ਰੇਸ਼ਾਨ ਹੋ ਕੇ ਦਲਜੀਤ ਸਿੰਘ ਵਿਦੇਸ਼ ਜਾ ਵਸੇ।

ਮਨਜੀਤ ਸਿੰਘ ਨਾਰੰਗ ਦੇ ਪੁਰਖਿਆਂ ਦਾ ਸਪਤਾਹਿਕ 'ਫਤਹਿ' ਤੇ ਮਾਸਿਕ 'ਪ੍ਰੀਤਮ' ਰਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਭਾ-ਟੀਆ ਦਾ ਸਪਤਾਹਿਕ 'ਕੌਮੀ ਏਕਤਾ' ਤੇ ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਇਹੀ ਮਾਸਿਕ ਬਣ 'ਸਚਿੱਤਰ ਕੌਮੀ ਏਕਤਾ' ਜ਼ਰੂਰ ਮਕਬੂਲ ਹੋਏ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਮੈਗਜ਼ੀਨਾਂ 'ਤਸਵੀਰ' ਨੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਸਰਕਾਰੀ ਅਦਾਰਿਆਂ ਦੇ ਜਨ-ਸਾਹਿਤ, ਪੰਜਾਬੀ ਦੁਨੀਆਂ, ਜਾਗ੍ਰਿਤੀ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰ ਟੱਕਰ ਦਿੱਤੀ, ਪਰ ਵਕਤ ਦਾ ਦਿਉ ਦਿੱਲੀ ਵਾਲਿਆਂ ਦੀਆਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਮੈਗਜ਼ੀਨਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਕਈ ਸਾਲ ਪਹਿਲਾਂ ਨਿਗਲ ਗਿਆ।

ਭਾਪਾ ਪ੍ਰੀਤਮ ਸਿੰਘ ਦੀ ਆਰਸੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਪ੍ਰੀਤਮ ਦੀ ਨਾਗਮਣੀ ਦੀ 'ਮਣੀ' ਵੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ-ਭਾਪਾ ਜੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪਤਾਲ ਲੋਕ ਪਹੁੰਚ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਇਹੋ ਹਾਲ ਡਾ. ਸੁਤਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਨੂਰ ਦੇ 'ਇਕੱਤੀ ਫਰਵਰੀ', ਪਿਆਰਾ ਸਿੰਘ ਦਾਤਾ ਦੇ 'ਨਵਾਂ ਸਾਹਿਤ', ਤਾਰਾ ਸਿੰਘ ਕਾਮਿਲ ਦੇ 'ਲੋਕ-ਰੰਗ' ਜਾਂ 'ਸੇਧ' ਦਾ ਹੋਇਆ। ਪੰਜਾਬੀ ਡਾਈਜੈਸਟ ਤੇ 'ਅਕਸ' ਦੀ ਪਹਿਲਾਂ ਵਾਲੀ ਚੜ੍ਹਤ ਨਾ ਰਹਿਣ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਾਬੀ ਭਵਨ ਦਾ 'ਸਮਕਾਲੀ ਸਾਹਿਤ' ਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਅਕਾਦਮੀ ਦਿੱਲੀ ਦਾ 'ਸਮਦਰਸ਼ੀ' ਜ਼ਰੂਰ ਆਪਣੇ ਅਦਾਰਿਆਂ ਦੇ ਬਲਬੂਤੇ ਚੱਲ ਰਹੇ ਹਨ। ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਨਾਭਾ ਤੋਂ ਸਾਹਿਤਕ ਮਾਸਿਕ 'ਮਹਿਰਮ' ਜ਼ਰੂਰ ਛੋਟੇ ਅਕਾਰ ਵਿੱਚ ਬਰਕਰਾਰ ਹੈ, ਪਰ 'ਅੱਖਰ', 'ਸਿਰਜਣਾ', 'ਫਿਲਹਾਲ', 'ਹੁਣ' ਘੱਟ ਹੀ ਝਲਕ ਮਾਰਦੇ ਹਨ।

ਰਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਭਾਟੀਆ ਦੀ ਮੌਤ ਤੋਂ ਬਾਅਦ 'ਸਚਿੱਤਰ ਕੌਮੀ ਏਕਤਾ' ਦੇ ਬੰਦ ਹੋ ਜਾਣ 'ਤੇ ਰੜਕਦੀ ਆ ਰਹੀ ਘਾਟ ਤੇ ਚਾਹਤ ਦੇ ਖੱਪੇ ਨੂੰ ਪੂਰਨ ਲਈ ਪਿਛਲੇ ਚਾਰ ਸਾਲ ਤੋਂ ਵੈਟਰਨ ਪੱਤਰਕਾਰ ਡਾ. ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਹਰਵਿੰਦਰ ਵੱਲੋਂ ਦਿੱਲੀ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪੰਦਰਾ ਰੋਜ਼ਾ 'ਵਿਸ਼ਵ ਦਰਸ਼ਨ' ਐਤਕੀ 2018 ਜਨਵਰੀ ਤੋਂ ਮਾਸਿਕ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਰੰਗੀਨ 52 ਸਫ਼ਿਆਂ ਦੇ ਆਰਟ ਪੇਪਰ 'ਤੇ ਵਧੀਆ ਦਿਖ ਨਾਲ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਇਸ ਮੈਗਜ਼ੀਨ ਵਿੱਚ ਰਾਜਨੀਤਕ, ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ, ਵਿਅੰਗ, ਸੈਰ-ਸਪਾਟੇ, ਜ਼ਰਾਇਤ, ਖੇਡ- ਜਗਤ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਾਹਿਤਕ ਚੇਟਕ ਵਾਲੇ ਪਾਠਕਾਂ ਦਾ ਵੀ ਧਿਆਨ ਰੱਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਤੋਂ ਬਾਹਰੋਂ ਕੈਨੇਡਾ ਵੈਨਕੂਵਰ ਤੋਂ 'ਇੰਡੋ-ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਟਾਈਮਜ਼', ਟੋਰਾਂਟੋ ਤੋਂ 'ਹਮਦਰਦ', ਬਰਤਾਨੀਆ 'ਚ ਲੰਡਨ ਤੋਂ 'ਦੇਸ਼-ਪ੍ਰਦੇਸ', ਨਿਊਜ਼ੀਲੈਂਡ ਤੋਂ 'ਪੰਜਾਬੀ ਕੂਕ' ਬਾਖੂਬੀ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਰਾਹੀਂ ਮਾਂ-ਬੋਲੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਕਲਕੱਤਾ ਤੋਂ ਨਰਿੰਜਣ ਸਿੰਘ ਤਾਲਬ ਦਾ ਰੋਜ਼ਾਨਾ 'ਦੇਸ਼ ਦਰਪਣ', 'ਨਵੀਂ ਪ੍ਰਭਾਤ' ਜੋ ਕਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਚਰਚਿਤ ਅਖ਼ਬਾਰ ਰਹੇ, ਅੱਜ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵੀ 'ਮਰਸੀਆ' ਪੜ੍ਹਿਆ ਜਾ ਚੁੱਕਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਸਮੇਂ ਦੇ ਹਾਣ ਦੀ ਹੋਣ ਲਈ ਪੂਰੀ ਵਾਹ ਲਾ ਰਹੀ ਹੈ, ਪਰ ਖ਼ਬਰਾਂ ਇਕੱਠੀਆਂ ਕਰਨ ਲਈ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪੀ ਟੀ ਆਈ, ਯੂ ਐਨ ਆਈ ਜਾਂ ਹੋਰ ਵੱਡੀਆਂ ਖ਼ਬਰ ਏਜੰਸੀਆਂ ਰਾਹੀਂ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਮੀਡੀਅਮ 'ਤੇ ਟੇਕ ਰੱਖਣੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਨਾਲ ਦੂਜੀ ਭਾਸ਼ਾ ਤੋਂ ਤਰਜ਼ਮਾ ਕਰਨ 'ਤੇ ਸਮਾਂ ਤਾਂ ਬਰਬਾਦ ਹੁੰਦਾ ਹੀ ਹੈ, ਕਈ ਵਾਰ ਤਾਂ ਅਰਥਾਂ ਦੇ ਅਨਰਥ ਹੀ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਆਕਾਸ਼ਵਾਣੀ ਦੇ ਦਿੱਲੀ ਕੇਂਦਰ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਖ਼ਬਰਾਂ ਬ੍ਰਾਡਕਾਸਟ ਕਰਦਿਆਂ ਇੱਕ ਪੰਜਾਬੀ ਨਿਊਜ਼ ਰੀਡਰ ਨੇ ਤਾਂ ਕਈ ਵਰ੍ਹੇ ਪਹਿਲਾਂ 'ਇੰਡੀਅਨ ਏਅਰ ਲਾਈਨਜ਼' ਨੂੰ ਭਾਰਤੀ ਹਵਾਈ ਲਕੀਰਾਂ ਤੱਕ ਵੀ ਬ੍ਰਾਡਕਾਸਟ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ।

ਅਜੋਕਾ ਯੁਗ ਆਧੁਨਿਕ ਤਕਨੀਕ ਦਾ ਯੁਗ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ/ਮੈਗਜ਼ੀਨਾਂ ਨੇ ਅਪਣਾ ਕੇ ਨਾ ਕੇਵਲ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੀ ਰਫ਼ਤਾਰ ਨੂੰ ਤੇਜ਼ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ, ਭਾਸ਼ਾ ਵਧੇਰੇ ਨਿੱਖਰੀ ਤੇ ਚੁਸਤ ਹੋਈ ਹੈ, ਛਪਾਈ ਤੇ ਦਿਖ ਲਿਸ਼ਕਾਂ ਮਾਰਦੀ ਹੈ, ਪ੍ਰਿੰਟਿੰਗ ਦੇ ਨਿਖਾਰ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਆਨ ਲਾਈਨ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ/ਮੈਗਜ਼ੀਨ ਪੜ੍ਹਨ ਤੱਕ ਦਾ ਆਨੰਦ ਆਉਂਦਾ ਹੈ, ਸਗੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਮੁਕਾਬਲਾ ਹੁਣ ਤੱਕ ਦੀ ਸਰਦਾਰੀ ਦੀ ਘੜੰਮ ਚੌਧਰਾਨੀ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਪ੍ਰੈਸ ਨਾਲ ਹੈ। ਸ਼ੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ/ਮੈਗਜ਼ੀਨ ਪੜ੍ਹਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਹਾਸਲ ਕਰਨ ਦੀ ਹੋੜ, ਦੌੜ ਤੇ ਉਤਸੁਕਤਾ ਲੱਗੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਸਾਡੇ ਮੁਲਕ ਵਿੱਚ ਸਵੇਰੇ-ਸਵੱਖਤੇ ਲੋਕ ਅਜੇ ਜਾਗੇ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੇ ਤੇ ਸਾਡੇ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਪੜ੍ਹਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਵਿਦੇਸ਼ਾ 'ਚ ਬੈਠੇ ਪੰਜਾਬੀ ਇੰਟਰਨੈਟ ਸੇਵਾਵਾਂ ਜ਼ਰੀਏ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਪੜ੍ਹਨ ਦਾ ਨਿਤਨੇਮ ਕਰ ਵੀ ਚੁੱਕੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।

ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਮੌਜੂਦਾ ਦੌਰ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੇ ਇਮਤਿਹਾਨ ਦਾ ਦੌਰ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਪ੍ਰੈਸ ਆਪਸੀ 'ਖਿਆਲਾਤੀ ਵੰਡ' ਦੀਆਂ ਵਲਗਣਾ ਦੇ ਭੰਬਲਭੂਸੇ 'ਚ ਫਸੀ ਹੋਈ ਅਜੇ ਵੀ ਬੇਬਸ ਅਤੇ ਗੁਸੈਲਪੁਣੇ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਨਹੀਂ ਆ ਸਕੀ। ਇਸ ਤੰਗ ਦਾਇਰੇ 'ਚੋਂ ਆਖਰ ਬਾਹਰ ਨਿਕਲਣਾ ਹੀ ਪਵੇਗਾ।

ਕਮਾਲ ਨਹੀਂ ਕਿ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਦੇ ਮਾਲਕਾਂ ਤੇ ਅਦਾਰਿਆਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਜਾਇਦਾਦ ਤਾਂ ਮੁਲਕ ਆਜ਼ਾਦ ਹੋਣ ਬਾਅਦ ਕਾਰੋਬਾਰ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰਕੇ ਕਈ-ਕਈ ਗੁਣਾਂ ਵਧਾ ਕੇ ਕਰੋੜਾਂ/ਅਰਬਾਂ ਰੁਪਏ ਦੀ ਕਰ ਲਈ ਹੈ, ਪਰ ਤਕਰੀਬਨ ਕੋਈ ਵੀ ਅਖ਼ਬਾਰ ਆਪਣੇ ਕਾਮੇ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਦੇ ਪਸੀਨੇ ਦਾ ਮੁੱਲ ਨਹੀਂ ਚੁਕਾ ਰਿਹਾ। ਪਾਰਟ-ਟਾਈਮ ਸਟਿੰਗਰਜ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਹੀ ਨਿਗੂਣਾ ਜਿਹਾ ਮਿਹਨਤਾਨਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਕਾਰਨ ਆਰਥਿਕ ਸੋਸ਼ਣ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਤਾਂ ਉਹ ਹੁੰਦੇ ਹੀ ਹਨ, ਸਗੋਂ ਬਹੁਤ ਅਹਿਮ ਰਿਪੋਰਟਟਿੰਗ ਕਰਨ ਤੋਂ ਸੱਖਣੇ ਵੀ ਰਹਿ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਰੋਜ਼ੀ ਰੋਟੀ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾ ਨੂੰ ਅਜਿਹੇ ਢੰਗ ਤਰੀਕੇ ਅਪਣਾਉਣੇ ਪੈਂਦੇ ਹਨ ਜੋ ਇੱਕ ਪੱਤਰਕਾਰ ਲਈ ਨੈਤਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਠੀਕ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੇ।

ਇਸ ਤੋਂ ਦਰਦਨਾਕ ਸ਼ਰਮਨਾਕ ਗੱਲ ਹੋਰ ਕੀ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿ ਕਈ ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਵੱਲੋ ਤਾਂ ਉਲਟਾ ਪੱਤਰਕਾਰ ਤੋਂ ਜ਼ਮਾਨਤ ਵਜੋਂ ਪੈਸੇ ਜਮ੍ਹਾ ਕਰਵਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੀ 'ਸੇਵਾ' ਕਰਨ ਦਾ ਅਵਸਰ ਮੁਹੱਈਆ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ। ਸਪਲੀਮੈਂਟ ਕੱਢਣ ਲਈ ਦਬਾਅ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਾਂ ਦੀ ਲਗਾਈ ਹੋੜ ਵਿੱਚ ਮਰਗਾਂ ਦੇ ਭੋਗਾਂ ਤੱਕ ਨੂੰ ਵੀ ਨਹੀਂ ਬਖ਼ਸ਼ਿਆਂ ਜਾਂਦਾ।

ਲੋਕਤੰਤਰ ਦੇ 'ਚੌਥੇ ਥੰਮ੍ਹ' ਵਜੋਂ ਜਾਣੀ ਜਾਂਦੀ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦੇ ਇਸ ਥੰਮ੍ਹ ਦੀ ਅਜਿਹੇ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਕਾਰਨ ਹੀ 'ਜੜ੍ਹ ਵੱਢੀ ਜਾ ਰਹੀ' ਹੈ। ਮੁਫ਼ਤੋ-ਮੁਫ਼ਤੀ ਕੰਮ ਕਰਨ ਵਾਲੇ 'ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ' ਤੋਂ ਇਹ ਉਮੀਦ ਰੱਖਣੀ ਕਿ ਉਹ ਥੰਮ ਨੂੰ ਠੁੰਮਣਾ ਦੇਣਗੇ, ਸਮਾਜ ਦੇ ਪਹਿਰੇਦਾਰ ਬਣਨਗੇ, ਬੇਵਕੂਫ਼ੀ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਹੋਰ ਕੀ ਕਹੀਏ! ਜਦੋਂ ਪੈਮਾਨਾ ਹੀ ਵਪਾਰ ਹੈ, ਤਾਂ 'ਚੌਥਾ ਥੰਮ' ਤਾਂ ਹਿੱਲੇਗਾ ਹੀ, ਤੇ ਫਿਰ ਉਹ ਵੀ ਉਦੋਂ ਜਦੋਂ ਇਸ ਥਮਲੇ ਨੂੰ ਜੱਫਾ ਅਜਿਹੇ ਹੀ ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਨੇ ਮਾਰਿਆ ਹੋਇਆ ਹੋਵੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਦਨਾਮੀ ਦੀ ਧੂੜ ਤੋਂ ਬਚਣ ਲਈ ਇੱਜ਼ਤਦਾਰ ਪੱਤਰਕਾਰ ਆਪਣੀ 'ਪੱਗ' ਬਚਾਉਣ ਲਈ ਫਿਕਰਮੰਦਰ ਹਨ। ਸ਼ੱਬਾ ਖੈਰ!

## ਹਵਾਲੇ

1. ਪੰਜਾਬੀ ਪੱਤਕਾਰੀ ਦਾ ਵਿਕਾਸ, ਡਾ. ਨਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਕਪੂਰ, ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਭਾਗ ਪੰਜਾਬ, ਪਟਿਆਲਾ, 1988
2. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ, ਈਸ਼ਰ ਸਿੰਘ ਅਟਾਰੀ, ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1987

# ਭਾਰਤੀ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ

ਡਾ. ਜਸਵਿੰਦਰ ਕੌਰ ਬਿੰਦਰਾ

ਅੱਜ ਦਾ ਯੁਗ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਯੁਗ ਹੈ। ਇਹ ਠੀਕ ਹੈ ਕਿ ਪ੍ਰਿੰਟ ਮੀਡੀਆ ਤੇ ਰੇਡੀਓ ਜਿਹੇ ਸੰਚਾਰ ਸਾਧਨ ਬਹੁਤ ਪੁਰਾਣੇ ਹਨ। ਉਨ੍ਹੀਵੀਂ ਸਦੀ ਤੋਂ ਹੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ, ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ ਅਰੰਭ ਹੋ ਗਿਆ ਸੀ। ਰਾਜਸੀ ਮੁੱਦਿਆਂ ਦੀ ਖ਼ਬਰ-ਸਾਰ ਦੇਂਦੇ-ਦੇਂਦੇ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਦੋਂ ਪ੍ਰਿੰਟ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ ਮਨੁੱਖਾਂ ਦੇ ਸਮਾਜਕ, ਪਰਿਵਾਰਕ ਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵੇਰਵਿਆਂ ਨਾਲ ਜੁੜਦੇ ਹੋਏ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਿਹਤ ਤੇ ਮਨੋਵਿਹਾਰ ਦਾ ਵੀ ਆਲਮੀਬਰਦਾਰ ਬਣ ਗਿਆ। ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਦੇਸ਼ਭਗਤ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਤੇ ਲੇਖਾਂ-ਨਿਬੰਧਾਂ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਨੇ ਸਾਹਿਤ ਦੀਆਂ ਹੋਰ ਵੰਨਗੀਆਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਲਾਵੇ ਵਿੱਚ ਬੰਨ੍ਹਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਲਗੱਭਗ ਸਾਰੀਆਂ ਹੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਤੇ ਦਿਨੋਂ-ਦਿਨ ਵੱਧਦੀਆਂ ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਵਿੱਚ ਇਕ ਪੰਨਾ ਜਾਂ ਐਤਵਾਰੀ ਅੰਕਾਂ ਵਿੱਚ ਸਾਹਿਤ ਦੀਆਂ ਮੌਲਿਕ ਰਚਨਾਵਾਂ ਤੇ ਸਾਹਿਤਕ ਪੜਚੋਲ ਰਾਖਵੇਂ ਹੋਣ ਲੱਗੇ। ਅੱਜ ਹਾਲਤ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਕਿਸੇ ਵੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਛਪਣ ਵਾਲੀਆਂ ਨਾ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਘੱਟ ਹਨ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਦੀ ਕੋਈ ਥੋੜ੍ਹ-ਤੋੜ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕਿੱਧਰੇ ਨ ਕਿੱਧਰੇ ਸਾਹਿਤਕ ਰਚਨਾਵਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਜਗ੍ਹਾ ਪੱਕੀ ਕੀਤੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਨਵੇਂ ਲੇਖਕਾਂ ਦੀਆਂ ਅਰੰਭਕ ਰਚਨਾਵਾਂ ਲਈ ਇਹ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਤੇ ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅਭਿਆਸੀਕਰਣ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਹਿੱਸਾ ਪਾਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸੇਧ ਦੇਣ, ਕਮੀਆਂ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਤੇ ਪਾਠਕਾਂ ਤਕ ਪਹੁੰਚ ਤੇ ਪਹਿਚਾਣ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਯੋਗਦਾਨ ਅਤਿਅੰਤ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਹੀ ਨਿਕਲਦੇ ਅਨੇਕਾਂ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਜਿਵੇਂ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, ਅਜੀਤ, ਨਵਾਂ ਜ਼ਮਾਨਾ, ਜਗਬਾਣੀ, ਦੇਸ਼ ਸੇਵਕ ਤੇ ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਹੋਰ ਕਈ ਨਾਂਵ ਲਈ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਛੱਪਦੇ-ਛਪਾਉਂਦੇ ਅਨੇਕਾਂ ਨਵੇਂ ਲੇਖਕ ਸਥਾਪਿਤ ਹੋ ਗਏ। ਪਾਠਕਾਂ ਵਿੱਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਪਛਾਣ ਬਣ ਗਈ। ਸਥਾਪਿਤ ਲੇਖਕਾਂ, ਆਲੋਚਕਾਂ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਦਾ ਘੇਰਾ ਹੋਰ ਵੱਧ ਗਿਆ।

ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਿਸੇ ਜ਼ਮਾਨੇ ਵਿੱਚ ਮਨੋਰੰਜਨ ਦੇ ਸਭ ਤੋਂ ਸਸਤੇ ਤੇ ਪਹੁੰਚ ਵਾਲੇ ਸਾਧਨ ਰੇਡੀਓ ਨੇ ਵੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕ ਵੰਨਗੀਆਂ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਨਵੇਂ-ਪੁਰਾਣੇ ਲੇਖਕਾਂ ਨੂੰ ਘਰ-ਘਰ ਪਛਾਣੇ ਜਾਣ ਦੀ ਸਹੂਲਤ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ। ਪੰਜਾਬੀ-ਉਰਦੂ ਦੇ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਲੇਖਕਾਂ ਨੂੰ ਰੇਡੀਓ ਨੇ ਨਾ ਸਿਰਫ਼ ਰੋਜ਼ਗਾਰ ਦਿੱਤਾ ਬਲਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਅਨੇਕਾਂ ਵਧੀਆ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵੀ ਇਸ ਲਈ ਲਿਖੀਆਂ, ਜੋ ਉਦੋਂ ਸਰੋਤਿਆਂ ਦਾ ਮਨ ਮੋਹਣ ਵਿੱਚ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋਈਆਂ, ਸਗੋਂ ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਹੋਣ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਪਾਠਕ ਵੀ ਮਿਲੇ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਦੁੱਗਲ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਪ੍ਰੀਤਮ, ਬਲਵੰਤ ਗਾਰਗੀ ਦੇ ਨਾਲ ਉਰਦੂ ਦੇ ਮੰਟੋ, ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਚੰਦ, ਰਾਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਬੇਦੀ ਤੇ ਰਤਨ ਸਿੰਘ ਜਿਹੇ ਕੱਦਾਵਰ ਲੇਖਕ ਤੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਜੁੜੇ ਰਹੇ। ਭਾਵੇਂ ਰੇਡੀਓ ਲਈ ਹੀ ਸਹੀ, ਪਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਉੱਚ ਪਾਏ ਦੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਕੀਤੀਆਂ। ਆਪਣੀ ਅਲੜ੍ਹ ਉਮਰ ਵਿੱਚ ਰੇਡੀਓ ਉਤੇ ਸ਼ੌਕ ਨਾਲ ਗਾਣੇ ਸੁਣਦੇ ਹੋਏ ਮੈਂ ਐਤਵਾਰ ਦੀਆਂ ਦੁਪਹਿਰਾਂ ਅਕਸਰ ਆਲ ਇੰਡੀਆ ਰੇਡੀਓ ਉਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਹੁੰਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਨੂੰ ਸੁਣਦੇ ਹੋਏ ਬਿਤਾਈਆਂ ਹਨ। ਮੈਨੂੰ ਯਾਦ ਹੈ, ਮੈਂ ਹਿੰਦੀ-ਮਰਾਠੀ ਦੇ ਵਿਜੈ ਤੇਂਦਲੇਕਰ ਤੇ ਸ਼ੰਕਰ ਸ਼ੇਸ਼ ਦੇ ਅਨੇਕਾਂ ਡਰਾਮੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਰੇਡੀਓ ਉਤੇ ਹੀ ਸੁਣੇ ਸਨ। ਮੈਂ ਅੱਜ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਯਾਦ ਕਰਦੀ ਹਾਂ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ ਸਾਹਿਤਕ ਭੁੱਖ ਨੂੰ ਜਗਾਇਆ ਤੇ ਐਸਾ ਮਗਰ ਲਾਇਆ ਕਿ ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ ਉਹ ਭੁੱਖ ਅਜੇ ਵੀ ਕਾਇਮ ਹੈ। ਹੁਣ ਵੀ ਹਿੰਦੀ ਤੇ ਹੋਰ ਖੇਤਰੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਰੇਡੀਓ ਤੋਂ ਅਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦਾ ਸਿਲਸਿਲਾ ਜ਼ਾਰੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਨਾਟਕ ਜਾਂ ਡਰਾਮੇ ਭਾਵੇਂ ਘੱਟ ਗਏ ਹਨ, ਪਰ ਫੀਚਰ, ਵਾਰਤਾ, ਕਹਾਣੀ, ਕਵਿਤਾ ਤੇ ਸਾਹਿਤ ਸੰਬੰਧੀ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਉਤੇ ਚਰਚਾ ਹੁੰਦੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦਾ ਸਮਾਂ ਭਾਵੇਂ ਥੋੜ੍ਹਾ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਸੱਚ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਰੇਡੀਓ ਉਤੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਮਨਫ਼ੀ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਲਈ ਭਾਵੇਂ ਰੇਡੀਓ ਦੇ ਢੇਰ ਸਾਰੇ ਚੈਨਲ ਸਿਰਫ਼ ਫ਼ਿਲਮੀ ਤੇ ਗ਼ੈਰ-ਫ਼ਿਲਮੀ ਗਾਣੇ ਸੁਣਨ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਹੋਣ, ਬਾਵਜੂਦ ਇਸ ਦੇ ਅਜੇ ਵੀ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਸਰੋਤੇ ਅਜਿਹੇ ਹਨ, ਜੋ ਰੇਡੀਓ ਉਤੇ ਅਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਬਹੁਤ ਗੰਭੀਰਤਾ ਤੇ ਚਾਵ ਨਾਲ ਸੁਣਦੇ ਹਨ।

ਜਨ-ਸੰਚਾਰ ਦਾ ਅਗਲਾ ਮਾਧਿਅਮ ਆਇਆ 'ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ'। ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਇਸ ਵਿੱਚ ਵੀ ਨਕਾਰਿਆ ਨਹੀਂ ਗਿਆ। ਪਹਿਲੇ-ਪਹਿਲ ਟੀ.ਵੀ. ਉਤੇ ਆਉਂਦੇ ਕਵੀ ਦਰਬਾਰ, ਕਵੀ ਸੰਮੇਲਨ ਤੇ ਮੁਸ਼ਾਇਰਿਆਂ ਨੇ ਰੰਗ ਜਮ੍ਹਾਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ। ਫਿਰ ਸਾਹਿਤਕ ਪੜਚੋਲ, ਲੇਖਕ ਨਾਲ ਮੁਲਾਕਾਤ ਆਦਿ ਅਨੇਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਹਿੰਦੀ ਤੇ ਇੰਗਲਿਸ਼ ਵਿੱਚ ਹਫ਼ਤੇ ਵਿੱਚ ਇਕ-ਅੱਧ ਵਾਰ ਭਾਵੇਂ ਅੱਧੇ ਘੰਟੇ ਲਈ ਹੀ ਆਉਂਦੇ ਸਨ, ਪਰ ਉਸ ਨਾਲ ਵੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਹਾਜ਼ਰੀ ਲੱਗਣੀ

ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਗਈ ਸੀ। ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਨੇ ਭਾਰਤ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਚੋਣਵੇਂ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਨਾਟਕ ਤੇ ਸੀਰੀਅਲਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕਈ ਵਾਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ। 'ਭਾਰਤ ਇਕ ਖੋਜ' ਦਾ ਲੜੀਵਾਰ ਪ੍ਰਸਾਰਣ ਹੋਵੇਂ ਤੇ ਭਾਵੇਂ ਫਿਰ ਬੰਗਲਾ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਸ਼ਰਤਚੰਦਰ ਦੇ ਅਨੇਕ ਨਾਵਲਾਂ ਜਿਵੇਂ ਚਰਿਤ੍ਰਹੀਣ, ਸ਼੍ਰੀਕਾਂਤ ਜਾਂ ਮੁਜ਼ਰਿਮ ਹਾਜ਼ਿਰ ਹੋ, ਉਤੇ ਬਣੇ ਸੀਰੀਅਲ ਹੋਣ ਜਾਂ ਮਰਾਠੀ ਨਾਟਕ। ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਪ੍ਰੀਤਮ, ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਦੁੱਗਲ, ਬਲਵੰਤ ਗਾਰਗੀ, ਕੁਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ਵਿਰਕ ਤੇ ਰਾਮ ਸਰੂਪ ਅਣਖੀ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦਾ ਨਾਟ-ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਕਰ ਕੇ ਸੀਰੀਅਲ, ਨਾਟਕ ਤੇ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਬਣਾਈਆਂ ਗਈਆਂ, ਜੋ ਅਤਿਅੰਤ ਮਕਬੂਲ ਹੋਈਆਂ ਤੇ ਸਰਾਹੀਆਂ ਗਈਆਂ। ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਚੈਨਲਾਂ ਦੀ ਭੀੜ ਉਤੇ ਸੀਰੀਅਲਾਂ ਦਾ ਜਮਘੱਟਾ ਵੀ ਲੱਗਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਉਸ ਵਿੱਚ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਅੰਸ਼ ਭਾਵੇਂ ਨਾਮਾਤਰ ਵੀ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ, ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬੇਸਿਰ-ਪੈਰ ਦੇ ਸੀਰੀਅਲਾਂ ਲਈ ਵੀ ਆਖ਼ਿਰ ਸਕ੍ਰਿਪਟ ਲਿਖੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਸੰਵਾਦ ਰਚੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਲੋੜ ਲੇਖਕਾਂ ਦੀ ਹੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਹੁਣ ਵੀ ਅਨੇਕ ਚੈਨਲਾਂ ਉਤੇ ਲੇਖਕਾਂ ਨਾਲ ਮੁਲਾਕਾਤ ਤੇ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।ਪਿੱਛਲੇ ਦਿਨੀਂ ਇਕ ਨਿਊਜ ਚੈਨਲ ਨੇ ਹਿੰਦੀ ਦੇ ਨਾਮਵਰ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੀ ਜੀਵਨੀ ਉਤੇ ਇਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਕੁਮਾਰ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਜਿਹੇ ਹਿੰਦੀ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਕਵੀ ਨੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ। ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਦਾ 'ਕਿਤਾਬਨਾਮਾ' ਵੀ ਇਕ ਚਰਚਿਤ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਦਿੱਲੀ ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਗੋਂ ਖੇਤਰੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਚੈਨਲਾਂ ਉਤੇ ਵੀ ਕੋਈ ਨ ਕੋਈ ਹਫ਼ਤੇਵਾਰੀ ਸਾਹਿਤਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਅਜੇ ਵੀ ਆਉਂਦਾ ਹੈ।ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਸਦਕਾ ਅਨੇਕਾਂ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪਾਠਕਾਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਰੋਤਿਆਂ ਦੇ ਰੂ-ਬ-ਰੂ ਹੋਣ ਦਾ ਮੌਕਾ ਵੀ ਮਿਲਦਾ ਹੈ।ਭਾਵੇਂ ਬਹੁਤੇ ਲੋਕ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਰੁਚੀ ਨਾ ਵੀ ਰੱਖਦੇ ਹੋਣ ਪਰ ਅਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਕਾਰਣ ਉਹ ਦੂਜੀਆਂ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਅਨੇਕ ਲੇਖਕਾਂ ਦੇ ਨਾਂ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਮੁਖ ਰਚਨਾਵਾਂ ਬਾਬਤ ਥੋੜੀ-ਬਹੁਤ ਜਾਣਕਾਰੀ ਹਾਸਿਲ ਕਰ ਲੈਂਦੇ ਹਨ।ਜਲੰਧਰ ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਨੇ ਵੀ ਇਸ ਪੱਖੋਂ ਯੋਗ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਲੇਖਕਾਂ, ਕਵੀਆਂ ਨਾਲ ਮੁਲਾਕਾਤਾਂ, ਰੂ-ਬ-ਰੂ, ਸਾਹਿਤਕ ਮਿਲਣੀਆਂ ਦੇ ਨਾਲ ਕਵਿਤਾ-ਪਾਠ ਤੇ ਕਵੀ ਦਰਬਾਰਾਂ ਰਾਹੀਂ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸਮੇਂ ਤੇ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਕਈ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਵਿੱਚ ਅਨੇਕਾਂ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਸਨਮੁਖ ਹੋਣ ਦਾ ਮੌਕਾ ਮਿਲਿਆ।ਅਜਿਹੇ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਵਿੱਚ ਲੇਖਕਾਂ ਜਾਂ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੇ ਜੀਵਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅਨੁਭਵ ਤੇ ਵਿਚਾਰ, ਸਾਹਿਤਕ ਰਚਨਾਵਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਕੋਈ ਗੱਲ ਜਾਂ ਘਟਨਾ ਦਾ ਬਿਓਰਾ ਵੀ ਮਿਲਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਤੋਂ ਕੋਈ ਨ ਕੋਈ ਸੇਧ ਜਾਂ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਮਿ-ਲਦੀ ਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਵਲ 'ਪਰਸਾ', ਦਲੀਪ ਕੌਰ ਟਿਵਾਣਾ ਦੇ ਨਾਵਲ 'ਏਹੋ ਹਮਾਰਾ ਜੀਵਣਾ', ਰਾਮ ਸਰੂਪ ਅਣਖੀ ਦੇ ਕਈ ਨਾਵਲਾਂ ਜਿਵੇਂ 'ਪਰਤਾਪੀ' ਆਦਿ ਨੂੰ ਟੀ.ਵੀ. ਸੀਰੀਅਲ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਲੜੀਵਾਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਸਮੇਂ-ਸਮੇਂ ਤੇ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਦੁੱਗਲ, ਕੁਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ਵਿਰਕ, ਅਜੀਤ ਕੌਰ ਤੇ ਅਨੇਕ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਤੇ ਨਾਵਲਾਂ ਦਾ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਕਰ ਕੇ ਨਾਟਕ, ਸੀਰੀਅਲ ਜਾਂ ਛੋਟੀਆਂ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ।ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਖੇਤਰੀ ਚੈਨਲਾਂ ਉਤੇ ਵੀ ਘੱਟ-ਵੱਧ ਹੀ ਸਹੀ, ਪਰ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਨ ਕਿਸੇ ਪੱਖੋਂ ਜੋੜਣ ਦਾ ਉਪਰਾਲਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਪੀ.ਟੀ.ਸੀ. ਚੈਨਲ ਉਤੇ 'ਇਕ ਕਹਾਣੀ' ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਦੇ ਤਹਿਤ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਚਰਚਿਤ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਦੀ ਕਿਸੇ ਇਕ ਕਹਾਣੀ ਨੂੰ ਨਾਟ-ਰੂਪ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਜੇ ਭਾਵੇਂ ਇਸ ਦੀ ਕੁਝ ਹੀ ਕੜੀਆਂ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਹੋਈਆਂ ਹਨ, ਪਰ ਇਹ ਇਕ ਵਧੀਆ ਜਤਨ ਹੈ। ਇਸ ਰਾਹੀਂ ਘਟੋ-ਘੱਟ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੇ ਨਾਂਵਾਂ ਦੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਹੋ ਜਾਏਗੀ। ਚੈਨਲ ਵਾਲੇ ਜੇ ਇਸ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਵਿੱਚ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਥੋੜ੍ਹਾ ਜਿਹਾ ਵੇਰਵਾ ਤੇ ਸਾਹਿਤਕ ਜਾਣਕਾਰੀ ਵੀ ਦੇ ਦੇਂਦੇ ਤਾਂ ਇਹ ਸੋਨੇ ਉਤੇ ਸੁਹਾਗੇ ਜਿਹਾ ਕੰਮ ਕਰਦਾ।

ਸਾਡੀਆਂ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਵੀ ਇਸ ਪੱਖੋਂ ਪਿੱਛੇ ਨਹੀਂ ਰਹੀਆਂ, ਭਾਵੇਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਬਹੁਤਾ ਵੱਡਾ ਯੋਗਦਾਨ ਇਸ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ, ਪਰ ਜੋ ਵੀ ਰਿਹਾ, ਉਸ ਨੇ ਬਹੁਤ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ। ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਪ੍ਰੀਤਮ ਦੇ ਕੁਝ ਨਾਵਲਾਂ ਉਤੇ ਚੰਗੀਆਂ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਬਣੀਆਂ, ਜਿਵੇਂ ਪਿੰਜਰ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਕਈ ਪੁਰਸਕਾਰ ਵੀ ਮਿਲੇ।ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ-ਸਾਹਿਰ ਦੀ ਪ੍ਰੇਮ-ਕਹਾਣੀ ਉਤੇ ਫ਼ਿਲਮ ਬਣਾਉਣ ਦੀ ਜ਼ੋਰਦਾਰ ਚਰਚਾ ਚਲ ਰਹੀ ਹੈ। ਹਿੰਦੀ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਵਿੱਚ ਹਿੰਦੀ, ਬੰਗਲਾ, ਮਰਾਠੀ ਤੇ ਅੰਗ੍ਰੇਜ਼ੀ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਵਧੇਰੇ ਬੋਲਬਾਲਾ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਿਨੇਮਾ ਵੀ ਇਸ ਤੋਂ ਪਿੱਛੇ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ।ਉਥੇ ਵੀ ਰਾਮ ਸਰੂਪ ਅਣਖੀ, ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਲ ਹੋਰ ਕਈ ਕੱਦਾਵਰ ਲੇਖਕਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾਵਾਂ ਉਤੇ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਬਣਾਈਆਂ ਗਈਆਂ।ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਜਿਵੇਂ 'ਛੋਟੀਆਂ ਫ਼ਿਲਮਾਂ' (ਸ਼ਾਰਟਜ਼ ਮੂਵੀਜ਼) ਵੱਲ ਰੁਝਾਨ ਵੱਧਣ ਲੱਗਾ ਹੈ, ਇਸ ਵਿੱਚ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਹਿਤਕ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵੱਲ ਜ਼ਿਆਦਾ ਧਿਆਨ ਦਿੱਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜਿਵੇਂ ਗੁਰਮੀਤ ਕੜਿਆਲਵੀਂ, ਭਗਵੰਤ ਰਸੂਲਪੁਰੀ, ਜਤਿੰਦਰ ਹਾਂਸ ਜਿਹੇ ਕਈ ਨੌਜਵਾਨ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਉਤੇ ਛੋਟੀਆਂ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਬਣਾਈਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ, ਜੋ ਬਹੁਤ ਮਕਬੂਲ ਵੀ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਤਾਂ ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਜਨ ਸਾਧਾਰਣ ਨੂੰ ਉੱਡਣ ਲਾ ਦਿੱਤਾ। ਇਸ ਦੀ ਤੇਜ਼ੀ ਤੋਂ ਸਾਹਿਤ ਵੀ ਅਛੂਤਾ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ। ਈ-ਮੇਲ, ਬਲੌਗ, ਸਾਹਿਤਕ ਵਾਲ, ਟਵੀਟਰ ਤੇ ਵਟਸਐਪ ਰਾਹੀਂ ਅੱਜ ਦੇ ਅਨੇਕ ਲੇਖਕਾਂ-

ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਨੇ ਇਸ ਨਾਲ ਦੌੜ ਲਗਾਉਣਾ ਸਿਖ ਲਿਆ ਹੈ। ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਲੇਖਕਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਸਾਹਿਤਕ ਪੇਜ਼ ਬਣਾਏ ਹੋਏ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਉਤੇ ਉਹ ਆਪਣੀ ਸਾਹਿਤਕ ਟਿੱਪਣੀ ਜਾਂ ਕਿਸੇ ਨਵੀਂ ਰਚਨਾ ਬਾਬਤ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਬਲੌਗ ਲਿਖਣ, ਟਿਵਟਰ, ਸਾਹਿਤਕ ਵਾਲ ਜਾਂ ਪੇਜ਼ ਉਤੇ ਲਿਖਣ ਦਾ ਰੁਝਾਨ ਵੀ ਵੱਧਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰਿਆਂ ਵਿਚੋਂ *ਫੇਸਬੁੱਕ* ਤੇ *ਵਟਸਐਪ* ਉਤੇ ਤਾਂ ਜਿਵੇਂ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਹੜ੍ਹ ਆਇਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਧਨਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਲੇਖਕ ਤਕਰੀਬਨ ਹਰ ਰੋਜ਼ ਕੋਈ ਨ ਕੋਈ ਰਚਨਾ ਜਾਂ ਸਾਹਿਤਕ ਟਿੱਪਣੀ ਪੋਸਟ ਕਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਵਟਸਅੱਪ ਗਰੁੱਪ ਬਣੇ ਹੋਏ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਉਤੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਕਿਸੇ ਦੀ ਕਵਿਤਾ, ਕਹਾਣੀ ਜਾਂ ਕੋਈ ਸਾਹਿਤਕ ਪੋਸਟ ਪੜ੍ਹਨ ਨੂੰ ਮਿਲਦੀ ਹੈ। 'ਇਸਤਰੀ ਸਿਰਜਨਾ' ਜਿਹੇ ਇਕ ਵਟਸਅੱਪ ਗਰੁੱਪ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਕਹਾਣੀਆਂ, ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਛੱਡੋ, ਪੂਰਾ-ਪੂਰਾ ਨਾਵਲ ਹੀ ਕਈ ਲੇਖਿਕਾਵਾਂ ਨੇ ਪੋਸਟ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਹਿੰਦੀ ਪਤ੍ਰਿਕਾਵਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ-ਆਪਣੇ ਗਰੁੱਪ ਬਣਾ ਲਏ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਨਿਰੰਤਰ ਸਾਹਿਤਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਦੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਦੇ ਨਾਲ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਲੇਖਕ ਦੀ ਅਖ਼ਬਾਰ, ਪਤ੍ਰਿਕਾ ਜਾਂ ਕਿਤਾਬ ਵਿੱਚ ਕਿੱਧਰੇ ਵੀ ਛਪੀ ਨਵੀਂ ਰਚਨਾ ਦਾ ਵੇਰਵਾ, ਕਾਲਕ੍ਰਮ ਸੂਚੀ ਰਾਹੀਂ ਤੇ ਬਕਾਇਦਾ ਉਸ ਦੇ ਫੋਟੋ ਸਮੇਤ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਹਿੰਦੀ ਦੇ ਵੱਡੇ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਕਾਂ ਵਾਣੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਰਾਜਕਮਲ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਪ੍ਰਭਾਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ ਗਿਆਨਪੀਠ, ਰਾਜਪਾਲ ਤੇ ਕਿਤਾਬ ਘਰ ਜਿਹੇ ਨਾਮਚੀਨ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਕ ਵੀ ਆਪਣੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਹੁੰਦੀਆਂ ਕਿਤਾਬਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਤੇ ਵੇਰਵਾ ਦੇਣ ਲਈ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਲੋਕਪ੍ਰਿਅ ਸਾਧਨਾਂ ਦਾ ਭਰਪੂਰ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਨ ਲੱਗੇ ਹਨ।

ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਐਨਾ ਫੈਲਾਓ ਦੇਖ ਕੇ ਮਨ ਬਹੁਤ ਖ਼ੁਸ਼ ਵੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।ਕਿੱਥੇ ਤਾਂ ਇਸ ਡਰ ਨੇ ਲੇਖਕਾਂ ਦੀ ਜਾਨ ਸੁਕਾਉਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵੱਧਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦਾ ਮਾੜਾ ਅਸਰ ਸਾਹਿਤ ਉਤੇ ਹੀ ਪਏਗਾ।ਭਲਾ ਕੌਣ ਪੜ੍ਹੇਗਾ ਕਿਤਾਬਾਂ....? ਵੈਸੇ ਵੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਕ ਤਾਂ ਹਮੇਸ਼ਾ ਹੀ ਇਹ ਕਹਿੰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ, ਜੀ, ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਕਿਤਾਬਾਂ ਪੜ੍ਹਦਾ ਕੌਣ ਹੈ? ਕਿਤਾਬ ਵਿਕਦੀ ਕਿੱਥੇ ਹੈ? ਜਦਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਕਾਂ ਨੂੰ ਲੇਖਕਾਂ ਨੇ ਹੀ ਮਾਲਾਮਾਲ ਕੀਤਾ ਹੈ।ਪਰ ਮਜ਼ੇ ਦੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸੇ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਹੀ ਲੇਖਕਾਂ ਦੀ ਸਿਆਣਪ ਨੇ ਆਪਣਾ ਹਥਿਆਰ ਸਮਝ ਕੇ ਵਰਤਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ।ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਜਿਹੜੀ ਰਚਨਾ ਨੂੰ ਜਾਨਣ ਵਾਲੇ ਮੁੱਠੀ ਭਰ ਪਾਠਕ ਤੇ ਜਾਣ-ਪਛਾਣ ਵਾਲੇ ਵੀ ਅਕਸਰ ਘੱਟ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਸਨ, ਉਸ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਸਾਧਨ ਪਲ ਵਿੱਚ ਸੈਂਕੜੇ ਕੀ ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਲੋਕਾਂ ਤਕ ਪਹੁੰਚਾ ਦਿੰਦੇ ਹਨ।ਕਈ ਵਾਰ ਤਾਂ ਲੱਗਦਾ ਹੈ, ਲੇਖਕਾਂ ਕੋਲ ਬੜਾ ਸਮਾਂ ਹੈ, ਉਹ ਐਨਾ ਵਕਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕੱਢਦੇ ਹਨ ਕਿ ਦਿਨ ਵਿੱਚ ਅਨੇਕਾਂ ਵਾਰ ਫੇਸਬੁੱਕ ਤੇ ਵਟਸਐਪ ਉਤੇ ਆਪਣੀ ਰਚਨਾ ਜਾਂ ਟਿਪਣੀ ਪੋਸਟ ਕਰ ਕੇ ਹਾਜ਼ਿਰੀ ਲਵਾ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਫਿਰ ਪ੍ਰਤੀਕ੍ਰਿਆਵਾਂ ਵੀ ਤੁਰੰਤ ਆਉਣੀਆਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ।ਬੱਲੇ ਭਈ..ਲੇਖਕਾਂ ਤੇ ਨਵੇਂ ਉਭਰਦੇ ਲੇਖਕਾਂ ਦੇ।

ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਅਜੋਕੇ ਸਾਧਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਵਿਭਿੰਨ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਲੇਖਕਾਂ ਬਾਰੇ ਜਾਣਕਾਰੀ ਵੱਧ ਰਹੀ ਹੈ। ਪ੍ਰਸੰਸਾਤਮਕ ਤੇ ਮਾੜੀਆਂ ਪ੍ਰਤੀਕ੍ਰਿਆਵਾਂ ਵੀ ਝੱਟ ਮਿਲ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ।ਲੋਕ ਪੁਰਾਣੇ ਜਾਂ ਕਿਸੇ ਵੀ ਲੇਖਕ ਦੇ ਜਨ-ਮਦਿਨ ਤੇ ਚਲ੍ਹਾਣਾ ਦਿਨ ਉਤੇ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕੋਈ ਰਚਨਾ ਪੋਸਟ ਕਰ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਨ ਲੱਗ ਪਏ ਹਨ।ਇਹ ਉਪਰਾਲਾ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਵਧੀਆ ਹੈ, ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਸੀਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਭੁੱਲੇ-ਭਟਕੇ ਹੀ ਸਹੀ, ਪਰ ਯਾਦ ਕਰਨ ਲੱਗੇ ਹਾਂ।ਪਰ ਐਨੀਆਂ ਚੰਗੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਦੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਵੀ ਸਾਨੂੰ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਕੁਝ ਕੁ ਗੱਲਾਂ ਦਾ ਧਿਆਨ ਰੱਖਣ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਸੁਚੇਤ ਹੋਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ :

ਜੋ ਵੀ ਸਾਹਿਤਕ ਰਚਨਾਵਾਂ *ਫੇਸਬੁੱਕ* ਤੇ *ਵਟਸਅੱਪ* ਉਤੇ ਪੋਸਟ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ, ਉਹ ਮੌਲਿਕ ਲੇਖਕ ਦੇ ਨਾਂ ਹੇਠ ਹੀ ਸਾਡੇ ਤਕ ਪੁਜ ਰਹੀਆਂ ਹਨ, ਇਹ ਜਾਨਣਾ ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਹੈ; ਕਿਉਂਕਿ ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਇਥੋਂ ਚੁੱਕ ਕੇ ਉਥੇ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਦਾ ਰੁਝਾਨ ਬਹੁਤ ਹੈ।ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਕਾਵਿ-ਟੋਟੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਨਾਵਾਂ ਹੇਠ ਕਈ ਗਰੁੱਪਸ ਵਿੱਚ ਮਿਲਦੇ ਹਨ।ਜੇ ਕੋਈ ਜਾਣਕਾਰ ਇਸ ਗ਼ਲਤੀ ਵੱਲ ਧਿਆਨ ਦਿਵਾਏ ਕਿ ਇਹ ਫਲਾਣੀ ਰਚਨਾ ਜਾਂ ਟੋਟੇ ਦਾ ਮੌਲਿਕ ਲੇਖਕ ਇਹ ਨਹੀਂ, ਉਹ ਹੈ। ਇਸ ਉੱਪਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਨਾਂ ਗਲਤ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਟੋਟੇ ਨੂੰ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਅਕਸਰ ਇਹ ਸਫ਼ਾਈ ਦੇਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੈਨੂੰ ਇਹ ਪੋਸਟ ਕਿਸੇ ਗਰੁੱਪ ਵਿੱਚ ਆਈ ਸੀ, ਮੈਂ ਇੱਥੇ ਪੋਸਟ ਕਰ ਦਿੱਤੀ। ਬਾਕੀ, ਮੈਨੂੰ ਇਸ ਬਾਰੇ ਕੋਈ ਜਾਣਕਾਰੀ ਨਹੀਂ ਜੀ। ਇਸ ਲਈ ਕੋਈ ਵੀ ਸਾਹਿਤਕ ਰਚਨਾ ਇਥੋਂ-ਉਥੋਂ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਠੀਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜਾਣ ਲੈਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਸਹੀ ਲੇਖਕ ਨੂੰ ਉਸ ਦਾ ਕ੍ਰੇਡਿਟ ਮਿਲ ਸਕੇ। ਕਹਿਣ ਦਾ ਭਾਵ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਸਾਹਿਤਕ ਚੋਰੀ ਜਿਹੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਹੁਣ ਆਮ ਹੁੰਦੀਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਉਤੇ ਕਿਸੇ ਨਾਂ ਦੀ ਪੱਕੀ ਮੋਹਰ ਆਸਾਨੀ ਨਾਲ ਨਹੀਂ ਲੱਗ ਸਕਦੀ। ਇਸ ਦਾ ਕਾਰਣ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਦਾ ਪਾਸਾਰਾ ਬਹੁਤ ਹੈ। ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਕੀ ਪਤਾ, ਉਸ ਦੀ ਕੋਈ ਰਚਨਾ ਕਿਸੇ ਨੇ ਕਿਹੜੇ ਗਰੁੱਪ ਵਿੱਚ ਥੋੜ੍ਹੇ ਜਿਹੇ ਹੇਰ-ਫੇਰ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਜਾਂ ਕਿਸ ਦੇ ਨਾਂ ਹੇਠ ਪਾ ਦਿੱਤੀ ਹੋਵੇ। ਮਤਲਬ ਕਾਪੀਰਾਈਟ ਜਿਹੀ ਗੱਲ ਇੱਥੇ ਲਾਗੂ ਨਹੀਂ ਹੋ ਰਹੀ।

ਦੂਜਾ, ਕੀ ਅਸੀਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਧਨਾ ਰਾਹੀਂ ਪੜ੍ਹੀ ਹਰ ਰਚਨਾ ਨੂੰ ਯਾਦ ਰੱਖ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਇੱਥੇ ਤਾਂ ਲਗਾਤਾਰ, ਹਰ

ਪਲ ਕੁਝ ਨ ਕੁਝ ਪੋਸਟ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਹਰ ਰਚਨਾ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤ ਮੰਨ ਕੇ ਹੀ ਉਸ ਦਾ ਸਵਾਗਤ ਕਰ ਰਹੇ ਹਾਂ ਜਾਂ ਬਸ ਟਾਈਮ ਪਾਸ ਕਰ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਨਾਲ ਕਿੱਧਰੇ ਸਾਡੀ ਸਾਂਝ ਸਾਹਿਤ ਨਾਲ ਵੱਧਣ ਦੀ ਬਜਾਏ ਘੱਟਣ ਤੇ ਨਹੀਂ ਲੱਗ ਰਹੀ। ਸਾਨੂੰ ਮਹਿਸੂਸ ਹੋਣ ਲੱਗਾ ਹੈ ਕਿ ਇੱਥੇ ਤਾਂ ਹਰ ਕੋਈ ਲੇਖਕ ਹੈ। ਕਿਤੇ ਲੇਖਕ ਬਣਨ ਵਜੋਂ ਸਿਰਫ਼ ਆਪਣੀ ਹਾਜ਼ਿਰੀ ਲਗਵਾਉਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ। ਗੰਭੀਰ ਅਧਿਐਨ ਜਿਹੀ ਗੱਲ ਇੱਥੇ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ ਹੋ ਪਾ ਰਹੀ।

ਤੀਜਾ, ਇੱਥੇ ਰਚਨਾ ਪੋਸਟ ਹੁੰਦੇ ਹੀ ਉਸ ਨੂੰ ਤੁਰੰਤ ਮਿਲਦੀਆਂ ਮੁਬਾਰਕਾਂ, ਲਾਈਕਜ਼ ਸਿਰਫ਼ ਫਰੇਂਡ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਤੇ ਤੇ ਲਿਹਾਜ਼ ਖ਼ਾਤਿਰ ਹੀ ਜ਼ਿਆਦਾ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਜਾਂ ਭਾਜੀ ਲੈਣ-ਦੇਣ ਜਿਹੀ ਤਕਨੀਕ ਹੀ ਵਧੇਰੇ ਵਰਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਅਜਿਹੇ ਲਿਹਾਜ਼ਾਂ ਤੇ ਭਾਜੀਆਂ ਨੇ ਅੱਗੇ ਹੀ ਸਾਹਿਤਕ ਪੱਧਰ ਦੀ ਆਲੋਚਨਾ ਨੂੰ ਮਾੜੇ ਪੱਧਰ ਵੱਲ ਧਕੇਲ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।

ਚੌਥਾ, ਕੀ ਸਚਮੁੱਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਰਾਹੀਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦਾ ਸਾਹਿਤਕ ਪੱਧਰ ਉਤੇ ਵਾਧਾ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਾਂ ਲੇਖਕ ਦੀ ਨਿਜੀ ਹੋਂਦ ਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਖ਼ਬਾਰ, ਪਤ੍ਰਿਕਾ ਜਾਂ ਕਿਤਾਬ ਵਿੱਚ ਛਪੀ ਰਚਨਾ ਦੇ ਚੰਗੇ ਤੇ ਮਾੜੇ ਹੋਣ ਦੀ ਪ੍ਰਤੀਕ੍ਰਿਆ ਪਾਠਕ, ਸਮੀਖਿਅਕ ਜਾਂ ਆਲੋਚਕ-ਸੰਪਾਦਕ ਵਲੋਂ ਆਉਂਦੀ ਹੈ, ਉਸ ਨਾਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਰੁਚੀ ਵੱਧਦੀ ਹੈ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਉਹ ਰਚਨਾ ਅਜੇ ਨਾ ਪੜ੍ਹੀ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਪੜ੍ਹਨ ਮਗਰੋਂ ਉਹ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਰੀਕਿਆਂ ਰਾਹੀਂ ਹੋਰ ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਮਝਣ ਦੇ ਯੋਗ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਮਤਲਬ ਕਿ ਰਚਨਾ ਬਾਰੇ ਚਰਚਾ ਦੂਜੇ ਲੋਕ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਲੇਖਕ ਆਪ ਨਹੀਂ। ਪਰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਵਿੱਚ ਲੇਖਕ ਆਪ ਇਸ ਸਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੈ। ਕਿਧਰੇ ਵੀ ਛਪਿਆ ਮਾੜਾ-ਮੋਟਾ ਰੀਵਿਊ ਜਾਂ ਕੋਈ ਇਕ-ਅੱਧ ਤੁਕ, ਲੇਖਕ ਹਰ ਗੱਲ ਨੂੰ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਪਿੱਛੇ ਨਹੀਂ ਦਿੱਸਦੇ। ਇੱਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਕਿਸੇ ਸਾਹਿਤਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋਣ ਤੇ ਵੀ ਕਈ ਤਸਵੀਰਾਂ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਦਾ ਰਿਵਾਜ ਪੈਂਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਇਸ ਸਭ ਨਾਲ 'ਸਾਹਿਤਕ ਪ੍ਰਦੂਸ਼ਣ' ਫੈਲਣ ਦਾ ਡਰ ਪੈਦਾ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਬਿਨਾ ਸੰਪਾਦਤ ਕੀਤੇ, ਬਗ਼ੈਰ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤੇ, ਸੱਚ-ਝੂਠ ਜਾਣੇ ਬਿਨਾ ਹਰ ਰਚਨਾ, ਜਾਣਕਾਰੀ ਨੂੰ ਪੋਸਟ ਕਰਨ ਦੀ ਹੋੜ ਲੱਗੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸਾਰੀ ਹਲਚਲ ਵਿੱਚ ਕਿਤੇ 'ਸਾਹਿਤ' ਉਸ ਦਾ 'ਪੱਧਰ', ਉਸ ਦਾ 'ਮੁਲਾਂਕਣ', ਉਸ ਦੀ 'ਗੰਭੀਰਤਾ' ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲੱਗਣਾ ਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਜਾਏ; ਕਿਉਂਕਿ ਸਾਹਿਤ ਜਿਹਾ ਵਿਸ਼ਾ ਸਮੇਂ, ਅਧਿਐਨ ਤੇ ਗੰਭੀਰਤਾ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਜਲਦਬਾਜੀ ਤੇ ਹੋੜ ਨਾਲ ਉਸ ਦਾ ਦੂਰ-ਦੂਰ ਤਕ ਨਾਤਾ ਨਹੀਂ। ਇਹ ਨਾ ਹੋਵੇ ਕਿ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਉਤੇ ਲਾਈਕਜ਼ ਤੇ ਮੁਬਾਰਕਾਂ ਭਰੋਸੇ ਉਭਰਨ ਤੇ ਪੁੰਗਰਨ ਵਾਲੇ ਲੇਖਕ ਬਸ ਇੱਥੇ ਹੀ ਸਥਾਪਿਤ ਨਾ ਹੋ ਕੇ ਰਹਿ ਜਾਣ, ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਪੱਕੇ ਪੈਰੀਂ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਬਣਾਉਣ ਦੇ ਯੋਗ ਵੀ ਬਣਨ...।

# ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਰੂਪਾਂਤਰਣ : ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ

ਡਾ. ਮਨੀਸ਼ਾ ਬੱਤਰਾ

ਇਕਵੀਂ ਸਦੀ ਤਕਨੀਕੀ ਪ੍ਰਗਤੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਉਭਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਪਹਿਲਾਂ ਤੋਂ ਉਪਲੱਬਧ ਤਕਨੀਕੀ ਸਰੋਤਾਂ ਵਿਚ ਲਗਾਤਾਰ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਨਵੀਨ ਵਾਪਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਕਿਸੇ ਵੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਤਰੱਕੀ ਜਾਂ ਵਿਕਾਸ ਵਿਸ਼ਵ-ਪੱਧਰ ਤੱਕ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਸੰਸਾਰੀਕਰਨ ਦਾ ਮੌਜੂਦਾ ਕੇਂਦਰ, ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਨੈੱਟਵਰਕ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੈ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਸਮਕਾਲੀ ਪਰਿਵੇਸ਼ ਵਿਚ ਸਾਡੇ ਦਿਨ-ਪ੍ਰਤੀਦਿਨ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵੇਰਵਿਆਂ ਅਤੇ ਉਸ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਲਗਭਗ ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ/ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਵੱਧ ਗਿਆ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਜਨ-ਸੰਚਾਰ ਮਾਧਿਅਮਾਂ ਟੀ.ਵੀ ਚੈੱਨਲ, ਰੇਡੀਓ, ਇੰਟਰਨੈੱਟ, ਸੋਸ਼ਲ ਨੈੱਟਵਰਕਿੰਗ, ਬਲੋਗਿੰਗ ਆਦਿ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਦੁਨੀਆ ਨਾਲ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਉਣ ਦਾ ਆਧਾਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦਾ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਕਲਾ, ਸਮਾਜ, ਸਭਿਆਚਾਰ, ਰਾਜਨੀਤੀ ਤੇ ਆਰਥਿਕਤਾ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੋਵੇ ਨੂੰ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਆਪਣੇ ਕਲਾਵੇ ਵਿਚ ਲੈ ਲਿਆ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਮੀਡੀਆ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦਾ ਚੌਥਾ ਥੰਮ੍ਹ ਬਣ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ/ਸੂਚਨਾ ਤੇ ਸੰਚਾਰ ਮਾਧਿਅਮਾਂ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਧਰਾਤਲ 'ਤੇ ਨਵੀਂ ਦੁਨੀਆ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕੀਤੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੇ ਦੇਸ਼/ਕਾਲ/ਸਮਾਜ ਵਿਚਲੇ ਖੱਪਿਆਂ ਨੂੰ ਮਿਟਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ 'ਚੋਂ ਗੁਜ਼ਰਦਿਆਂ ਇਸ ਨੇੜਤਾ ਨੇ ਸਾਡੇ ਮੁੱਢਲੇ ਸਭਿਆਚਾਰ, ਸਾਹਿਤ, ਕਲਾ, ਗਿਆਨ ਅਤੇ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨਾਲ ਇਕ ਡੂੰਘਾ ਸੰਬੰਧ ਕਾਇਮ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ ਵਿਚ ਵਿਭਿੰਨ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਰਾਹੀਂ ਆਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ 'ਚੋਂ ਕਿੰਨਾ ਕੁਝ ਜੋੜ-ਤੋੜ ਰਹੇ ਹਨ।

ਗਲੋਬਲ/ਵਿਸ਼ਵ-ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਇਸ ਸੰਵਾਦ ਸਿਰਜਣਾ ਦੇ ਜ਼ਰੀਏ, ਇਕ ਸਭਿਆਚਾਰ ਤੋਂ ਦੂਜੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨਾਲ ਜੁੜਨਾ, ਅਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਕਾਇਮ ਕਰਨਾ ਹੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੰਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਖਿੱਤੇ, ਕੌਮਾਂ ਇਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਨੈੱਟਵਰਕ ਵਿਚ ਬੱਝੇ ਗਏ ਹਨ। ਦੋ ਜਾਂ ਦੋ ਤੋਂ ਵੱਧ ਸਭਿਆਚਾਰ/ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀਆਂ ਦਾ ਆਪਸੀ ਅਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਕਾਇਮ ਹੋਣਾ ਬਿਲਕੁਲ ਕੁਦਰਤੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਹੈ, ਸੋ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮਿਸ਼ਰਣ ਕਾਰਨ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਦਾ ਵਾਪਰਨਾ ਸਹਿਜ ਸੁਭਾਵਿਕ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਸਹਿਜ ਅਵਸਥਾ ਵਿਚ ਹੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅੰਦਰ ਲੁਕਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਮੀਡੀਆ, ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਅਤੇ ਸੂਚਨਾ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਨੇ ਇਸ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਦੀ ਗਤੀ ਨੂੰ ਹੋਰ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤੇਜ਼ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਨੂੰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵੀ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ: *"Transformation of culture or cultural changes, refer to the dynamic process whereby the living cultures of the world are changing and adapting to external or internal forces. This process is occurring within western culture as well as non-western and indigenous culture and culture of the world. Forces which contribute to cultural changes are Media, globalization, advance in Communication, Colonization, Transport and infrastructure and informational Technology."*

ਉਪਰੋਕਤ ਪੇਸ਼ ਤੱਥ ਤੋਂ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸੂਚਨਾ ਤਕਨਾਲੋਜੀ/ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਅੰਤਰ-ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸੰਵਾਦ ਕਾਰਣ ਵਾਪਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਜ਼ਿਆਦਾ ਵਧਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਸਭਿਆਚਾਰਕ/ਸਮਾਜਕ ਵਿਗਿਆਨੀ ਇਸ ਨੂੰ 'ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸੰਪਰਕ' ਜਾਂ 'ਸਭਿਆਚਾਰੀਕਰਣ' (Culturalisation) ਦਾ ਨਾਂ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਸੰਸਾਰੀਕਰਣ/ਗਲੋਬਲਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਸੋਰਕਾਰਾਂ ਨੇ 'Culturalisation' ਦੀ ਇਸ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਵਿਚ ਬਹੁ-ਪੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦਾ ਅਰਥ, ਆਰਥਿਕ/ਸਮਾਜਕ ਕਿਰਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦੀਆਂ ਸੀਮਾਵਾਂ ਤੋਂ ਅੱਗੇ ਸੰਸਾਰ ਪੱਧਰ ਤੱਕ ਲਿਜਾਉਣ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੈ ਅਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਗਲੋਬਲਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਅਰਥਾਂ ਦੇ ਘੇਰਿਆ ਤੋਂ ਬਾਹਰ, ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਦੁਨੀਆ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾ ਦਿੱਤਾ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਦੇ ਨਤੀਜੇ ਵਜੋਂ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਵੱਧ ਰਹੀਆਂ ਵਸਤਾਂ, ਸੇਵਾਵਾਂ, ਵਪਾਰ, ਸਰਮਾਇਆ, ਤਕਨਾਲੋਜੀ, ਸੂਚਨਾ ਅਤੇ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਦੂਜੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਅਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ ਵੱਧ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਬਹੁ-ਪੱਖੀ ਆਯਾਮ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ, ਅਜੋਕੇ ਯੁਗ ਵਿਚ ਪੂਰੀ ਦੁਨੀਆ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਚਰਚਿਤ ਵਰਤਾਰਾ ਬਣ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੂੰ ਉਤਸਾਹਿਤ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਜੀ-7 ਅਤੇ ਜੀ-8 (G7/G8) ਮੁਲਕ ਹਨ। ਜਿਸ ਦੇ ਮੈਂਬਰ ਦੇਸ਼ ਅਮਰੀਕਾ, ਇੰਗਲੈਂਡ, ਜਰਮਨੀ, ਫਰਾਂਸ, ਕੈਨੇਡਾ, ਇਟਲੀ ਤੇ ਜਪਾਨ ਹਨ। ਕੁਝ-ਕੁ ਚਿੰਤਕ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ

ਦੀਆਂ ਜੜ੍ਹਾਂ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚੋਂ ਭਾਲਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਸਮਕਾਲੀ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੂੰ ਦੂਜੇ ਸੰਸਾਰ ਯੁੱਧ ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਦੇ ਗਲੋਬਲੀ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਵਿਚ ਦੇਖਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚੋਂ ਹੀ ਪੂੰਜੀਵਾਦ (Capitalism) ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ। ਜਿਸ ਦੇ ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਵਪਾਰਕ ਮੰਡੀਆਂ ਦੀ ਭਾਲ ਅੰਤਰਗਤ ਬਹੁ-ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਕੰਪਨੀਆਂ (Multinational Companies) ਦੁਆਰਾ ਵਪਾਰ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ। ਗਲੋਬਲ ਪੱਧਰ ਤੇ ਬਹੁ-ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਕੰਪਨੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਉਪਲਬਧ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਸਨਅਤੀ ਸਮਾਨ Label ਜਾਂ Branded ਸਮਾਨ ਜਿਵੇਂ (Nokia, Samsung Nike, Reebok, Sony, iphone), ਆਧੁਨਿਕ ਮਸ਼ੀਨਰੀ ਜਿਵੇਂ; Ultrabook, Microsoft Window-10, Metro/Rapid Metro, ਸਟਾਕ ਐਕਚੇਂਜ (Stock Exchange), ਆਟੋ ਮੋਬਾਇਲਜ਼ (Auto Mobiles), ਚੀਨੀ ਰੈਸਟੋਰੈਂਟ (Chinese Restaurant), ਮੈਕਡੋਨਲਡ (McDonalds), ਕੇਂਟਕੀ ਫਰਾਇਡ ਚਿਕਨ (Kentucky Fried Chicken) ਆਦਿ ਗਲੋਬਲੀ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਦਾ ਹੀ ਨਤੀਜਾ ਸਨ।

ਸੁਪਰ ਪਾਵਰ ਮੁਲਕ ਜੀ-7 ਤੇ ਜੀ-8 (G7/G8) ਦਾ ਆਰਥਕ/ਰਾਜਨੀਤਕ/ਸਭਿਆਚਾਰਕ/ਤਕਨੀਕੀ ਏਕ-ਾਧਿਕਾਰ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਹ ਤੀਜੀ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਤੇ ਆਪਣੀ ਸਮਾਰਜਵਾਦੀ/ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਸਥਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਯਤਨਸ਼ੀਲ ਰਹੇ ਹਨ। ਸੰਸਾਰ ਪੱਧਰ ‘ਤੇ ਪੂੰਜੀਪਤੀ/ਅਮੀਰ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਜੋਂ ਜਾਣੇ ਜਾਂਦੇ ਇਸ G7/G8 ਨੇ ਕਾਰਪੋਰੇਸ਼ਨ ਜਗਤ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕੀਤਾ, ਜਿਸ ਦਾ ਮੂਲ ਆਧਾਰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਹੀ ਹੈ। ਗਲੋਬਲ ਪੱਧਰ ‘ਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕ ਸੰਦਾਂ/ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਸਮਾਜਕ/ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸੰਪਰਕ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਕਰਨ ਵਿਚ ਤੇਜ਼ੀ ਨਾਲ ਵਾਧਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੇ ਨਤੀਜੇ ਵੱਜੋਂ ਆਪਸੀ ਤਜ਼ਾਰਤ (Trade/Commerce) ਵਟਾਂਦਰਾ ਅਤੇ ਨਿਰਭਰਤਾ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਇਹ ਆਰਥਕ ਪ੍ਰਬੰਧ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦੇ ਲਗਭਗ ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵੱਖਰੀਆਂ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਵਿਚੋਂ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ/ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕੀਤੀ; ਉਹ ਅੰਤਰ-ਰਾਸ਼ਟਰੀਕਰਨ (Inter-Nationalization), ਉਦਾਰੀਕਰਨ (Liberlization), ਸੰਸਾਰੀਕਰਨ (Universalization), ਪੱਛਮੀਕਰਨ (Westernization) ਅਤੇ ਅਸਥਾਈਕਰਨ (Dettersitorialization) ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਦਾ ਵਿਸ਼ਵ-ਪੱਧਰੀ ਫੈਲਾਅ ਮੀਡੀਆ/ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਕਰਕੇ ਹੀ ਸੰਭਵ ਹੋ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਨਤੀਜੇ ਵਜੋਂ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਅਤੇ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਆ ਗਈ ਹੈ ਅਤੇ ਸਮਾਰਜਵਾਦ ਦਾ ਇਕ ਨਵਾਂ ਸਵਰੂਪ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਅੰਤਰਗਤ ਸਮਾਰਜਵਾਦ ਦੇ ਤੱਤ ਮੂਲਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਮਾਰਜਵਾਦ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਸਮਾਰਜਵਾਦ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ।

ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ‘ਵਿਸ਼ਵ-ਮੀਡੀਆ’ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਉਭਰਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਬਹੁ-ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਕੰਪਨੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਨਿਵੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵ-ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸੂਚਨਾ ਤੇ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਨਵੀਨ ਸੰਕਲਪਾਂ ਨਵ-ਮੀਡੀਆ/ਸੋਸ਼ਲ-ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਤਸਾਹਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ ਕਿ ਅੱਜ ਪੂਰਾ ਵਿਸ਼ਵ, ਗਲੋਬਲ-ਪਿੰਡ/ਗਲੋਬਲ-ਇਕਾਈ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੋ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਿਣਾ ਅਤਕਥਨੀ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗੀ ਕਿ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਅਧੀਨ ‘ਗਲੋਬਲ’ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ‘ਲੋਕਲ’ ਤੱਕ ਪਿਆ ਹੈ। ਗਲੋਬਲਾਈਜ਼ੇਸ਼ਨ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵੀ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਸੰਚਾਰ ਅਤੇ ਸਾਇਬਰ-ਸਪੇਸ ਵਰਗੀਆਂ ਆਧੁਨਿਕ ਤਕਨੀਕਾਂ ਦੀ ਕੇਂਦਰੀ ਭੂਮਿਕਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਸੋਸ਼ਲ ਸਾਈਟ ਤੇ ਬਲਾਕ ਰਾਈਟਿੰਗ, ਜਿਵੇਂ ਕਿ; ਫੇਸਬੁੱਕ (Facebook), ਟਵਿੱਟਰ (Twiter), ਇੰਸਟਾਗ੍ਰਾਮ (Instagram), ਯੂ-ਟਿਊਬ (Youtube), ਲਿੰਕਡਇੰਨ (Linkedin) ਤੇ ਗੂਗਲ ਪਲੱਸ (Goggle Plus) ਮੈਸੇਜ਼ ਲਈ; ਵਟੱਸਐਪ (Whatsapp), ਹਾਈਕ (Hike), ਫੇਸਟਾਇਮ (FaceTime) ਅਤੇ ਫੇਸਬੁੱਕ ਮੈਸੇਨਜ਼ਰ (Facebook Messenger) ਸਕਾਇਪ (Skype) ਦਾ ਨੈੱਟਵਰਕ ਉੱਸਰ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਪਿਛਲੇ ਕੁਝ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਦੌਰਾਨ ਸੰਚਾਰ, ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਜਾਂ ਆਵਾਜਾਈ ਨੇ ਸੰਸਾਰ-ਵਿਥ ਨੂੰ ਅਸਲੋਂ ਖ਼ਤਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਗਲੋਬਲ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਨੇ ਹੱਦਾਂ-ਰਹਿਤ ਸੰਸਾਰ (Borderless world), ਸੰਸਾਰ-ਰਾਜ (World-State) ਅਤੇ ਸੰਸਾਰ-ਮੰਡੀ (World-Market) ਵਰਗੀਆਂ ਸਥਾਪਨਾਵਾਂ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਨਾਲ ਆਨਲਾਈਨ ਟਰੇਡ (Online-Trade) ਨੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਮੰਡੀ ਦੇ ਸੰਕਪਲ ਨੂੰ ਉਭਾਰਿਆ ਹੈ; ਇਸ ਦਾ ਉਦਾਹਰਣ ਫੇਸਬੁੱਕ, ਯੂ-ਟਿਊਬ, ਗੂਗਲ ਪਲੱਸ ਜਾਂ ਹੋਰਨਾਂ ਸਾਇਟਸ ‘ਤੇ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਬਾਰੀ ਹੈ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਮਾਨ ਵੇਚਣ ਵਾਲੀਆਂ ਵਿਭਿੰਨ ਕੰਪਨੀਆਂ ਨੂੰ ਗਲੋਬਲ ਮਾਰਕਿਟ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਫੇਸਬੁੱਕ ਅਤੇ ਟਵਿੱਟਰ ਵਰਗੀਆਂ ਸੋਸ਼ਲ ਸਾਈਟਸ ਨੇ ਜਿਉ-ਟਾਰਗਟਿੰਗ (Geo-Targeting) ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਅਧੀਨ ਸਥਾਨ, ਪਸੰਦ ਅਤੇ ਜਨ-ਅੰਕੜਿਆਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ‘ਤੇ ਉਭੋਗਤਾਵਾਂ ਨੂੰ ਨਿਸ਼ਾਨਾ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਬਾਜੀ ਕਰਨ ਵਾਲਿਆਂ ਦਾ ਸਮਰੱਥਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਲ ਮੱਲਟੀ-ਲੋਕੇਸ਼ਨ ਬਰਾਂਡ ਆਪਣੀਆਂ ਸਥਾਨਕ ਵੈਬਸਾਈਟਾਂ ਦੀ ਅਗਵਾਈ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੇ ਸਮਾਨ ਨੂੰ ਗਲੋਬਲ-ਮੰਡੀ ਵਿਚ ਵੇਚਣ ਲਈ ਖੇਤਰ ਜਾਂ ਪੋਸਟ ਕੋਰਡ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੀਆਂ ਟਾਰਗਟਿੰਗ ਸਮਰੱਥਾਵਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਕਰ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ। ਨਤੀਜੇ ਵੱਜੋਂ ਅੱਜ ਕਿਸੇ ਵੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਅੰਤਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਬਰਾਂਡ ਤੱਕ

ਪਹੁੰਚ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸਾਧਾਰਣ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ-ਪ੍ਰਸਾਰ ਵਿਚ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਅਦਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਇਤਿਹਾਸਕ ਕਾਲ ਤੋਂ ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ ਤੱਕ ਵਿਭਿੰਨ ਕਾਰਣਾਂ ਕਰਕੇ ਹੱਦਾਂ ਰਹਿਤ ਆਵਾਸ-ਪਰਵਾਸ ਦੇ ਰੁਝਾਨਾਂ ਵਿਚ ਵਾਧਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਬਲਕਿ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਹੋਣ ਵਾਲਾ ਪਰਵਾਸ ਨਿਰੋਲ ਖਿੱਤਿਆਂ ਦਾ ਪਰਵਾਸ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ ਸਗੋਂ ਇਹ ਸਮਾਜਕ, ਆਰਥਕ, ਰਾਜਨੀਤਕ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਆਦਿ ਪਰਿਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਹੋਣ ਵਾਲਾ ਪਰਿਵਰਤਨ/ਬਦਲਾਵ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਿਣਾ ਗਲਤ ਨਹੀਂ ਹੋਵਗਾ ਕਿ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਪਲਾਇਨ, ਸਮਾਜਕ ਜੀਵਨ ਦੀ ਧੁਰੀ ਬਣ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਗਲੋਬਲਾਈਜੇਸ਼ਨ ਜਾਂ ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕ ਦੌਰ ਵਿਚ ਜਿਵੇਂ ਬਾਹਮਲੇ ਮੁਲਕਾਂ ਵੱਲ ਨੂੰ ਪਲਾਇਨ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਨੇ ਸਮਾਜਕ ਗਰੁੱਪ ਦੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਪਣੀ ਵੱਖਰੀ ਪਛਾਣ ਸਥਾਪਤ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਉਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਹੀ ਸਥਾਨਕ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਬਜਾਇ ਗਲੋਬਲ-ਮੀਡੀਆ/ਵਿਸ਼ਵ-ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵੱਧਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਪਲਾਇਨ ਵੀ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਪਿਛਲੇ ਦਿਨਾਂ ਹੀ ਆਈ ਇਕ ਖ਼ਬਰ ਅਨੁਸਾਰ ਯੂ.ਐਸ (ਯੂਨਾਇਟਿਡ ਸਟੈਟਸ) ਨੇ ਇਕ ਆਦੇਸ਼ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਅਨੁਸਾਰ ਯੂਨਾਇਟਿਡ ਸਟੈਟਸ ਆਪਣੇ ਦੇਸ਼ ਦਾ ਵੀਜ਼ਾ ਦੇਣ ਲਈ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦੀ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਪਿਛਲੇ ਪੰਜ ਸਾਲਾਂ ਵਿਚ ਦਿੱਤੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਦੀ ਜਾਂਚ ਕਰੇਗਾ। ਆਪਣੇ ਦੇਸ਼/ਮੁਲਕ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਆਵਾਸ/ਪਰਵਾਸ ਦੇ ਸੁੱਰਖਿਅਤ ਸੰਕਲਪਾਂ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਦਿਆਂ ਅਮਰੀਕਾ ਦੇ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਡੋਨਾਲਡ ਟਰੰਪ ਨੇ ਦੇਸ਼ ਹਿੱਤ ਲਈ ਇਹ ਖ਼ਾਸ ਫ਼ੈਸਲਾ ਲਿੱਤਾ। ਇਸ ਖ਼ਬਰ ਬਾਰੇ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਨ ਦਾ ਇਕ ਖ਼ਾਸ ਕਾਰਣ ਇਹ ਹੈ ਕਿ; ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਵਿਅਕਤੀ ਦੀ ਵਿਅਕਤੀਗਤ/ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਪਛਾਣ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸੋਸ਼ਲ/ਸਮਾਜਕ-ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਆਧਾਰਿਤ ਪਛਾਣ ਕਿੰਨੀ ਕੁ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ ਬਣ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਅੱਜ ਫੇਸਬੁੱਕ (Facebook), ਟਵਿੱਟਰ (Twiter) ਅਤੇ ਇੰਸਟਾਗ੍ਰਾਮ (Instagram) ਰਾਹੀਂ ਇਹ ਨਿਰਧਾਰਤ ਕੀਤਾ ਜਾਣ ਲੱਗ ਪਿਆ ਹੈ ਕਿ; ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਸਰਗਰਮ ਰਹਿਣ ਵਾਲਾ ਵਿਅਕਤੀ ਕਾਨੂੰਨੀ ਪਛਾਣ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਥਾਨਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਪਣੇ ਦੇਸ਼/ਮੁਲਕ ਦਾ ਵਸਨੀਕ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ਵ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਪਲਾਇਨ ਕਰਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਹੈ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਲੋਕਾਂ ਵਿਚ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦਾ ਗਲੋਬਲੀ ਵਿਸਤਾਰ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਲੋਕ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਅਧਿ-ਕਾਰ ਅਧੀਨ ਸੰਸਾਰਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਆਪਣੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਦੁਨੀਆ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਅਜਿਹੇ ਵੇਲੇ 'ਲੈਂਗੁਏਜ਼ ਬਾਰੋਇੰਗ' (Language Borrowing) ਜਾਂ 'ਕੰਨਵਰਜੈਨਸ' (Convergance) ਦਾ ਸੰਕਲਭ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨੇ ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਅਤੇ ਸਥਾਨਕ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਸਪੇਸ਼ ਮੁਹਇਆ ਕਰਵਾਇਆ ਹੈ। ਸੂਚਨਾ ਤਕਨਾ-ਲੋਜੀ ਦੇ ਨਵੀਨ ਦੌਰ ਵਿਚ ਜੋ ਖ਼ਬਰ ਮੁੱਖ ਧਾਰਾ ਦੇ ਮੀਡੀਆ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਸਥਾਨ ਨਹੀਂ ਪਾ ਸਕਦੀ ਸੀ, ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਉਸ ਖ਼ਬਰ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ ਨੂੰ ਸਪੇਸ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਨਤੀਜੇ ਵਜੋਂ ਅੱਜ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਮਦਦ ਰਾਹੀਂ ਵਿਸ਼ਵ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਹਰ ਕੋਨੇ ਵਿਚ ਰਹਿ ਰਹੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਤਾਜ਼ਾ ਖ਼ਬਰ (ਭਰਏਕਨਿਗ ੲਾਸ) ਬਾਰੇ ਤੁੰਰਤ ਜਾਣਕਾਰੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀਉੱਤਰ ਵਜੋਂ ਇਕ ਗਲੋਬਲ ਪ੍ਰਭਾਵ ਉਭਰਦਾ ਹੈ ਜਿਵੇਂ ਕਿ; ਇਸ ਸਾਲ ਦੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਮਦਦ ਰਾਹੀਂ ਮਹਿਲਾ ਦਿਵਸ ਦੇ ਮੌਕੇ 'ਤੇ #ਇਠੋ ਮੋਵਇਮਇਨਟ ਦਾ ਆਗਾਜ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਇਸ ਮੁਹਿੰਮ ਦਾ ਮੁੱਖ ਮੰਤਵ ਜਿਨਸੀ ਤੌਰ 'ਤੇ ਹਿੰਸਾ ਦੀਆਂ ਸ਼ਿਕਾਰ ਔਰਤਾਂ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਹਾਸ਼ੀਏ 'ਤੇ ਰੱਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਰਿਹਾ ਨੂੰ ਸਮਰਥਨ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਨਾ ਸੀ। ਇਸ ਮੁਹਿੰਮ ਦੀ ਮਦਦ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੀ ਚੁੱਪ ਕਾਰਣ ਪੀੜ੍ਹਤ ਔਰਤਾਂ ਵਾਸਤੇ ਵਿਸਵ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਇਕ ਸੁਰ ਵਿਚ ਆਵਾਜ਼ ਚੁੱਕੀ ਗਈ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿਚ ਭਾਰਤ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਦੁਨੀਆ ਭਰ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਨੇ ਇਸ ਮੁਹਿੰਮ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਸਮਰਥਨ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤਾ। ਇਹ ਇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਗਲੋਬਲ ਮੁਹਿੰਮ ਦੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਉਭਰਨ ਵਾਲੀ ਲਹਿਰ ਸੀ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਹੀ ਮਹਿਲਾ ਦਿਵਸ ਦੇ ਮੌਕੇ 'ਤੇ ਗਲੋਬਲ ਸੰਸਥਾ ਯੂਨੀਸੈਫ਼ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਇਕ ਤਾਜ਼ਾ ਰਿਪੋਰਟ 'ਇਕ ਪਛਾਣਿਆ ਚਿਹਰਾ' ਅਨੁਸਾਰ ਬੱਚਿਆਂ ਅਤੇ ਨੌਜਵਾਨਾਂ 'ਤੇ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਹਿੰਸਾ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਬਾਰੇ ਦਿੱਤੇ ਗੰਭੀਰ ਆਕੜੇਂ, ਵਿਸ਼ਵ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਕੁੜੀਆਂ ਅਤੇ ਔਰਤਾਂ ਨਾਲ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਸੋਸ਼ਣ ਦੀ ਤਸੀਵਰ ਨੂੰ ਦੁਨੀਆਂ ਸਾਹਮਣੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਆਕੜਿਆਂ ਅਨੁਸਾਰ ਸੰਸਾਰਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਨੌਜਵਾਨ ਕੁੜੀਆਂ ਨਾਲ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਸਰੀਰਕ ਅਤੇ ਮਾਨਸਿਕ ਸੋਸ਼ਣ ਵਿਚ, ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੁੜੀਆਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਹਮਲਾਵਰਾਂ ਬਾਰੇ ਪਤਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਪਛਾਣ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਦੁਨੀਆ ਭਰ ਵਿਚ 15 ਤੋਂ 19 ਸਾਲ ਤੱਕ ਦੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਦਾ ਜਿਨਸੀ ਸੋਸ਼ਣ ਜਾਂ ਬਲਤਕਾਰ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇੱਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਪਿਛਲੇ ਸਾਲ ਦੇ ਆਂਕੜਿਆਂ ਅਨੁਸਾਰ 9 ਲੱਖ ਕੁੜੀਆਂ ਦਾ ਜਿਨਸੀ ਸੋਸ਼ਣ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਮਾਤਰ 1% ਕੁੜੀਆਂ ਨੇ ਹੀ ਮਦਦ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਆਪਣੀ ਪਹੁੰਚ ਕੀਤੀ ਹੈ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੱਥਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਹੱਦਾਂ ਰਹਿਤ ਸਮਾਜ/ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕੀਤੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਅੰਤਰਗਤ ਮਸ਼ੀਨੀ ਦੁਨੀਆ/ਮਸ਼ੀਨੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਵੀ

ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ 'ਕੰਪਿਊਟਰ ਚੇਟਿੰਗ' (Computer Chating) ਤੇ 'ਕੰਪਿਊਟਰ ਡੇਟਿੰਗ' (Computer Dating) ਦਾ ਸਿਲਸਿਲਾ ਅੱਜ ਸਭ ਤੋਂ ਖ਼ਤਰਨਾਕ ਰੁਝਾਨ ਵਿਚ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਵਰਤੋਂ/ ਦੁਰਵਰਤੋਂ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਲੋਕ ਤਕਨੀਕੀ ਉਤੇਜਨਾ (Technological Excitement) ਕਾਰਨ ਪੈਦਾ ਹੋਈਆਂ ਅਸੀਮ ਇੱਛਾਵਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਕਰਨ ਲਈ ਕਈ ਵਾਰ ਜ਼ੁਰਮ ਦਾ ਰਾਹ ਅਪਣਾਉਣ ਤੋਂ ਵੀ ਗੁਰੇਜ਼ ਨਹੀਂ ਕਰਦੇ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਪ੍ਰਦੂਸ਼ਿਤ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਕਾਰਣ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਗ਼ੈਰ-ਕਾਨੂੰਨੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦੀ ਗ੍ਰਿਫ਼ਤ ਤੋਂ ਸਮੁੱਚਾ ਸੰਸਾਰ ਬਚ ਨਹੀਂ ਸਕਿਆ। ਜਿਸ ਵਿਚੋਂ ਸਾਈਬਰ ਕਰਾਈਮ (Cyber Crime)[6] ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਵੀ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਪ੍ਰੱਤਖ-ਅਪ੍ਰੱਤਖ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨਾਲ ਹੀ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਪੱਖੋਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਨੂੰ ਇਕ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਜੋਂ ਸਮਝਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ, ਮੀਡੀਆ/ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਸੰਧਾਂ ਦੀ ਮਦਦ ਰਾਹੀਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਵਿਚ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਬਾਕੀ ਸਮਾਜ/ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਨਾਲ ਪੈਦਾ ਹੋਏ ਆਦਾਨ-ਪ੍ਰਦਾਨ ਨੂੰ ਨਿਰਖਿਆ-ਪਰਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵ-ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੀ ਪ੍ਰਗਤੀ ਨੇ ਬਹੁ-ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰ ਨੂੰ ਸੰਭਵ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ 'ਚ ਦੁਨੀਆ ਭਰ ਵਿਚ ਕਿਸੇ ਸਮਾਜਕ ਅੰਦੋਲਨ ਨੂੰ ਦਿਸ਼ਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਨ ਵਿਚ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਕਿਰਿਆਸ਼ੀਲ ਭੂਮਿਕਾ ਅਦਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਬਹੁ-ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਧਰਾਤਲ 'ਤੇ ਸੰਵਾਦ ਦੀਆਂ ਅਸੀਮ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀਆਂ ਹਨ ਜਿਸ ਨੇ ਵਿਸ਼ਵ ਦੀ ਨਵੀਨ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ। ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਅੱਜ ਪੂਰਾ ਵਿਸ਼ਵ ਇਕ ਇਕਾਈ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਿਰੰਤਰ ਤਬਦੀਲੀ ਕਾਰਨ ਹੀ 'ਸਥਾਨਕ-ਵਿਸ਼ਵੀ' ਤੇ 'ਵਿਸ਼ਵੀ-ਸਥਾਨਕ' ਦਾ ਰੂਪ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਨ ਲੱਗ ਪਏ ਹਨ। ਕੁਲ ਮਿਲਾ ਕੇ, ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦੇ ਇਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਇਕ ਅਨਿਯਮਤ ਅਤੇ ਅੱਟਲ ਤਾਕਤ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ ਜਿਸ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਗਰਮਵਾਦ (Activism) ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਗੱਲ ਵਿਚ ਕੋਈ ਸੰਦੇਹ ਨਹੀਂ ਹੈ ਕਿ ਭਵਿੱਖ ਮੂਲਕ ਗਤੀਵਿਧੀਆਂ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਹੋਰ ਜ਼ਿਆਦਾ ਵਿਆਪਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਅਤੇ ਵਧੀਆ ਢੰਗ ਨਾਲ ਵਰਤਿਆ ਜਾਵੇਗਾ।

## ਹਵਾਲੇ


1. The Encyclopedia of Wikipedia, page www.wikipedia.org/wiki/culturaltransfoamtion.html
2. https://www.investopedia.com/articles/economics/10/globalization-developed-countries.asp
3. https://www.searchlaboratory.com/2015/07/the-impact-of-globalisation-on-social-media/
4. http://sasikmedia.com/new_thought.php?p_id=366
5. https://www.theguardian.com/lifeandstyle/2017/dec/21/we-created-the-metoo-movemen now-its-time-for-hertoo
6. Cybercrimes can be defined as: "Offences that are committed against individuals or groups of individuals with a criminal motive to intentionally harm the reputation of the victim or cause physical or mental harm, or loss, to the victim directly or indirectly, using modern telecommu nication networks such as Internet (networks including but not limited to Chat rooms, emails, notice boards and groups) and mobile phones (Bluetooth/SMS/MMS)".
7. Homi K. Bhabha, *"Of mimicay and man : The ambivalence of colonical discourse"*, The Location of Culture, Page 86-87.
8. ਟੀ. ਆਰ. ਵਿਨੋਦ (ਡਾ.), *"ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ : ਸਾਮਰਾਜੀ ਕਿ ਸਮਾਜਵਾਦੀ"*, ਪੰਜਾਬੀ ਆਲੋਚਨਾ ਸ਼ਾਸਤਰ, ਪੰਨਾ 57.
9. Jana Evans Braziel and Anita Mannur, "Nation, Migration, Globalization : Points of Contention in Diaspora Studies", Theorizing Diaspora, *Jana Evans Braziel, Anita Mannur (Ed.)*, Page 1.

# ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਹੁੰਦੇ ਨਾਰੀ ਬਿੰਬ: ਇਕ ਨਜ਼ਰੀਆ

ਡਾ. ਦੀਪਾ ਕੁਮਾਰ

ਪਿਛਲੇ ਕੁੱਝ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਦੇ ਦੌਰਾਨ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ’ਤੇ ਬਹੁਤ ਕੁੱਝ ਲਿਖਿਆ ਹੋਇਆ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਅਨੇਕਾਂ ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਅਤੇ ਅੰਤਰ-ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਸੈਮੀਨਾਰਾਂ ਵਿਚ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਨੇ, ਆਪੋ-ਆਪਣੀ ਵਿਦਵੱਤਾ ਅਨੁਸਾਰ, ਅਣਗਿਣਤ ਪਰਚੇ ਪੜ੍ਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਸਭ ਕੁੱਝ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਅਸੀਂ ਪੱਕੇ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਨਾਲ ਇਕ ਨਹੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਕਿ ਅੱਜ ਔਰਤ ਨੇ ਤਰੱਕੀ ਦੀਆਂ ਪੂਰੀਆਂ ਮੰਜ਼ਿਲਾਂ ਤੈਅ ਕਰ ਲਈਆਂ ਹਨ। ਔਰਤ ਦਾ ਅਬਲਾ, ਬੇਸਹਾਰਾ, ਬੇਬਸ, ਲਾਚਾਰ ਤੇ ਨਿਮਾਣੀ ਸਥਿਤੀ ਵਾਲਾ ਸਰੂਪ, ਕੁੱਝ ਹੱਦ ਤੀਕ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ, ਸੁਹਜ, ਸਿਆਣਪ, ਸੁੰਦਰ, ਸੰਵੇਦਨਸ਼ੀਲ, ਵਿ-ਵੇਕਸ਼ੀਲ, ਸਿਰੜੀ ਵਾਲੇ ਸਰੂਪ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੋਇਆ ਤਾਂ ਹੈ, ਪਰ, ਜੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵੱਲ ਨਜ਼ਰ ਮਾਰੀਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਚਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦਾ ਮੁਲਾਂਕਣ, ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ‘ਮਰਦ ਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ’ ਤੋਂ ਹੋਇਆ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸ਼ਾਇਦ ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਔਰਤ, ਅੱਜ ਵੀ ‘ਇਨਸਾਨ’ ਨਾਲੋਂ ਵੱਧ, ‘ਵਸਤੂ’ ਵਜੋਂ ਹੀ ਜਾਣੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਹੁਣ ਸਵਾਲ ਇਹ ਉੱਠਦਾ ਹੈ ਕਿ ਘਰ ਦੀ ਚਾਰਦੀਵਾਰੀ ਤੋਂ ਰਾਜਨੀਤੀ ਤਕ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ, ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਜਗਤ ਤਕ, ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਲੋਹਾ ਮਨਵਾਉਂਦੀ ਹੋਈ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ, ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਧਰ ’ਤੇ ਵੀ ਕੋਈ ਸੁਧਾਰ ਹੋਇਆ ਹੈ? ਕੀ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੀ ਚਮਕ-ਦਮਕ ਵਾਲੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਅਧੀਨ, ਮੀਡੀਏ ਵਿਚ ਸਿਰਜੇ ਜਾ ਰਹੇ ਨਾਰੀ-ਬਿੰਬ, ਕੋਈ ਛਲਾਵਾ ਜਾਂ ਭਰਮ-ਸਿਰਜਣਾ ਮਾਤਰ ਤਾਂ ਨਹੀਂ? ਕੀ ਅਜਿਹੇ ਨਾਰੀ-ਬਿੰਬ ਸਿਰਜਣ ਪਿੱਛੇ, ਮਰਦ-ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੀ ਪਿੱਤਰਕੀ ਸੱਤਾ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਣ ਦੀ ਕੋਈ ਸਾਜ਼ਿਸ਼ ਤਾਂ ਨਹੀਂ? ਇਹ ਖੋਜ-ਪੱਤਰ, ਅਜਿਹੇ ਕੁੱਝ ਹੋਰ ਪ੍ਰਸ਼ਨਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਮੁਖ਼ਾਤਿਬ ਹੋਵੇਗਾ।

ਆਧੁਨਿਕ ਯੁਗ ਸੰਚਾਰ ਦਾ ਯੁਗ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਸੂਚਨਾ-ਕ੍ਰਾਂਤੀ, ਇਕ ਵੱਡੀ ਸ਼ਕਤੀ ਬਣ ਕੇ ਉੱਭਰੀ ਹੈ। ਸੂਚਨਾ-ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਕਾਰਨ ਜਨ-ਸੰਚਾਰ, ਬੜੀ ਤੇਜ਼ੀ ਨਾਲ ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਨੂੰ ਬਦਲ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸਮੇਂ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਅਜਿਹੇ ਕੁੱਝ ਬਦਲਾਅ, ਸੂਚਨਾ-ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਵੀ ਨਿਰੰਤਰ ਆ ਰਹੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਸਦਕਾ, ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਪਰਿਵਰਤਨ ਵਾਪਰ ਰਹੇ ਹਨ ਅਤੇ ਪੂਰਾ ਵਿਸ਼ਵ ਇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ‘ਗਲੋਬਲ ਪਿੰਡ’ (Global Village) ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੁੰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਗਹੁ ਨਾਲ ਵੇਖਿਆਂ ਪਤਾ ਚਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ‘ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ’, ਤੀਜੀ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਉੱਤੇ ਭਾਰੀ ਪੈਂਦਾ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ, ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਸੰਕਲਪ ਹੈ, ਜਿਸਦੇ ਪਿਛੋਕੜ ਵਿਚ ਉੱਤਰ-ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਦੌਰ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ, ਉੱਤਰ-ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਇਕ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਕੰਮ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ, ਜੋ ਸਮੁੱਚੇ ਵਿਸ਼ਵ ਦਾ ਮੰਡੀਕਰਨ ਕਰਕੇ, ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਲਾਵੇ ਵਿਚ ਲੈਣ ਲਈ ਯਤਨਸ਼ੀਲ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਦੇ ਅਧੀਨ ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਆਰਥਕਤਾ, ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਸਮਾਜਕਤਾ, ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਨੈਤਿਕਤਾ ਅਤੇ ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਫ਼ਲਸਫ਼ੇ ਨੇ, ਸਾਡੀ ਨਿੱਜੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਕੇ, ਹੋਰ ਵੀ ਖੁੱਲ੍ਹਾ-ਡੁੱਲਾ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਡਾ. ਸਵਰਨ ਚੰਦਨ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਡਾ. ਮਨਜੀਤ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦੇ ਹਨ, “ਜੇਕਰ ਖੁੱਲ੍ਹ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਸਹੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਮਝ ਲਿਆ ਜਾਏ ਤਾਂ ਪੂਰੇ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਚ ‘ਸੂਚਨਾ ਦੇ ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਪਾਸਾਰ ਤੇ ਪ੍ਰਚਾਰ’ ਨੂੰ ਸਮਝਣਾ, ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ।[1] ਖੁੱਲ੍ਹ ਦੀ ਇਸ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਵਿਚ, ਮੰਡੀਕਰਨ ਦੇ ਚਲਦੇ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੀ ਦੁਨੀਆ ਇਤਨੀ ਪ੍ਰਭਾਵੀ ਹੋ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਖੇਤਰ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਨ ਸਮੇਤ, ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਸ਼ੀਸ਼ੇ ਵਜੋਂ ਉੱਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆ ਰਹੀ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਆਪਣੀ ਪਕੜ ਮਜ਼ਬੂਤ ਬਣਾਈ ਰੱਖਣ ਲਈ, ਵਸਤੂ ਦੀ ਮੰਗ ਵਿਚ ਵਾਧਾ ਕਰਨ ਲਈ, ਵਸਤੂ ਦੇ ਗੁਣਾਂ ਅਤੇ ਸ੍ਰੇਸ਼ਠਤਾ ਨੂੰ ਸਾਬਤ ਕਰਨ ਲਈ ਵਪਾਰੀ ਕੰਪਨੀਆਂ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਏਜੰਸੀਆਂ ਦਾ ਸਹਾਰਾ ਭਾਲਦੀਆਂ ਹਨ। ਸਰਕਾਰੀ ਅਤੇ ਗ਼ੈਰ-ਸਰਕਾਰੀ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਵੀ, ਆਪਣੀਆਂ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ-ਪ੍ਰਸਾਰ ਲਈ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਦਾ ਹੀ ਸਹਾਰਾ ਲੈਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇੰਞ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ, ਸੰਸਾਰ ਜਿਵੇਂ ‘ਗਲੋਬਲ ਪਿੰਡ’ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ, ਠੀਕ ਉਂਞ ਹੀ ਵਿਗਿਆਪਨ, ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਬਾਜ਼ਾਰ (open market) ਦੀ ਭੌਤਿਕਵਾਦੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਬਣਾਈ ਰੱਖਣ ਲਈ, ਅਹਿਮ ਭੂਮਿ-ਕਾ ਨਿਭਾਉਂਦੇ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਵਿਗਿਆਪਨ ਅੱਜ ਕੇਵਲ ਰੇਡੀਓ, ਟੀ.ਵੀ., ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਤਕ ਹੀ ਸੀਮਿਤ ਨਹੀਂ ਰਹਿ ਗਿਆ, ਸਗੋਂ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਦੁਨੀਆ ਵਿਚ ਵੀ, ਇਸ ਦਾ ਬਹੁਤ ਵਿਸਥਾਰ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਸਭ ਕੁੱਝ ਨੇ, ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਕਈ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਦਾ, ਵਸਤੂਪਰਕ (Objective) ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਕਰਨਾ, ਅੱਜ ਲਾਜ਼ਮੀ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੋ ਰਿਹੈ।

ਵਿਗਿਆਪਨ ਜਗਤ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਕਰਦਿਆਂ ਤਾਂ ਪਤਾ ਚਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦੇ

ਅਕਸ ਨੂੰ ਕਈ ਤਰੀਕਿਆਂ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਪਹਿਲਾ ਰੂਪ, ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਕ ਸਰੂਪ ਵਾਲਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਔਰਤ ਘਰੇਲੂ ਵਸਤੂਆਂ ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਜਿਵੇਂ; ਤੇਲ, ਮਿਰਚੀ ਪਾਊਡਰ, ਨਮਕ, ਡਿਟਰਜੈਂਟ ਪਾਊਡਰ, ਭਾਂਡੇ ਸਾਫ ਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰੋਡੱਕਟ, ਪ੍ਰੈਸ਼ਰ ਕੁੱਕਰ, ਬੱਚਿਆਂ ਦੇ ਇਸਤੇਮਾਲ ਦੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ ਆਦਿ ਵਿਚ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂ-ਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰੇ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਮਰਦ, ਸੇਲਸਮੈਨ ਵਜੋਂ ਤੇ ਔਰਤ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਸਤੂਆਂ ਨੂੰ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਦੀ ਜਾਂ ਕਰਨ ਦੇ ਤਰੀਕੇ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ, ਜੋ ਕਿ ਔਰਤ ਦੇ ਪਰੰਪਰਕ ਸਰੂਪ ਦੇ ਪ੍ਰਗਟਾਵੇ ਵਿਚ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਇਹ ਦਰਸਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮ-ਕਾਰ ਔਰਤਾਂ ਲਈ ਹੀ ਨਿਰਧਾਰਤ ਹਨ। ਭਾਵੇਂ, ਔਰਤ ਅਤੇ ਮਰਦ ਦੋਵੇਂ ਮਿਲ ਕੇ, ਘਰ ਦੀ ਅਰਥਵਿਵਸਥਾ ਚਲਾਉਂਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਘਰ ਆ ਕੇ ਰੋਟੀ, ਔਰਤ ਹੀ ਪਕਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਮਿਸਾਲ ਵਜੋਂ; Smartphone ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚ ਇਕ ਔਰਤ, ਘਰ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਆਫਿਸ ਵਿਚ ਪਤੀ ਦੀ ਬਾਸ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਦਫ਼ਤਰ ਦਾ ਕੰਮ ਛੇਤੀ ਨਾਲ ਮੁਕਾ ਕੇ ਘਰ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਕਿਉਂਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਅਹਿਸਾਸ ਹੈ ਕਿ ਆਫ਼ਿਸ ਵਿਚ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਉਸਦੇ ਮੁਲ-ਾਜ਼ਮ ਪਤੀ ਨੇ ਬਹੁਤ ਕੰਮ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਉਸ ਲਈ ਘਰ ਜਾ ਕੇ, ਸਵਾਦਲਾ ਖਾਣਾ ਪਕਾਉਣਾ ਹੈ। ਉਹ ਖਾਣਾ ਤਿਆਰ ਕਰਕੇ, ਫ਼ੋਨ ਦੇ video call ਆਪਸ਼ਨ ਰਾਹੀਂ, ਆਪਣਾ ਬਣਾਇਆ ਖਾਣਾ, ਪਤੀ ਨੂੰ ਦਿਖਾਉਂਦੀ ਹੋਈ, ਘਰ ਆਉਣ ਦਾ ਸੱਦਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਵਿਗਿਆਪਨ ਭਾਵੇਂ ਤਰੱਕੀ-ਪਸੰਦ ਔਰਤ ਦੇ ਅਕਸ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਆਪਣੇ ਅੰਤ ਵਲ ਜਾਂਦਾ ਜਾਂਦਾ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਔਰਤ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਤੇ, ਉਸਦੇ ਲਈ ਪਿੱਤਰਸਤਾ ਦੁਆਰਾ ਨਿਰਧਾਰਤ ਕੀਤੇ ਕੰਮਾਂ ਵਲ ਸੰਕੇਤ ਕਰ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ, ਭਾਵੇਂ ਕਿਸੇ ਵੀ ਮੁਕਾਮ ਤੇ ਪਹੁੰਚ ਜਾਵੇ ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਸੋਚ ਅਤੇ ਵਿਹਾਰ ਤੋਂ ਉਸਦੀ ਮੁਕਤੀ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ। ਕੰਮ ਦੀ ਲਿੰਗ ਆਧਾਰਤ ਵੰਡ, ਸਮਾਜ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਜਗਤ ਵਿਚ ਵੀ ਮੌਜੂਦ ਹੈ।

ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦਾ ਅਸਲੀਅਤ ਤੋਂ ਦੂਰ, ਧੁੰਦਲਾ, ਗਲੈਮਰ ਭਰਪੂਰ, ਉਤੇਜਤ ਹੋਣ ਵਾਲਾ (ਕਾ-ਮੁਕ) ਜਾਂ ਹਲਕੇ ਸਵਾਦਾਂ ਨੂੰ, ਹਵਾ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਅਕਸ ਵਜੋਂ ਉਭਾਰਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਗੀਰੂ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਇਸ ਵਿਵਸਥਾ ਦੇ ਮੂਲ ਵਿਚ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਤਹਿਤ ਮਰਦ, ਔਰਤ ਨੂੰ, ਜਿਸ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੇਖਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਉਸੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੇਖਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਸੋਚ ਦੇ ਤਹਿਤ, ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਨੇ ਨਵੇਂ ਫ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਪਾ ਕੇ, ਔਰਤ ਦੀ ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਨੂੰ, ਉਸਦੇ ਨੰਗੇਜ਼ ਜਾਂ ਉਤੇਜਕ ਸਰੂਪ ਨੂੰ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਨਾਲ ਜੋੜਿਆ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਬਹੁਤੇ ਉਦਾਹਰਣ, ਸਾਨੂੰ ਟੀ. ਵੀ. ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਆਮ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ, ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਦਾੜ੍ਹੀ ਬਣਾਉਣ ਵਾਲੇ ਯੰਤਰਾਂ ਦੀ ਤੁਲਨਾ ਔਰਤ ਦੀ ਦੇਹ ਨਾਲ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ, ਮਰਦਾਂ ਦੀਆਂ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਣ ਵਾਲੀਆਂ ਸ਼ੇਵਿੰਗ ਕ੍ਰੀਮਾਂ, ਬਲੇਡ, ਰੇਜ਼ਰ, ਮੋਟਰਸਾਈਕਲ, ਸ਼ਰਾਬ, ਸੋਡਾ, ਤੰਬਾਕੂ, ਗੁਟਕਾ, ਮਾਊਥ ਫਰੈਸ਼ਨਰ ਆਦਿ ਦੀ ਖਾਸੀਅਤ ਦੱਸਦੀਆਂ, ਬਹੁਤਾ ਕਰਕੇ, ਔਰਤਾਂ ਹੀ ਨਜ਼ਰੀ ਪੈਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇੱਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਪੁਰਸ਼ ਅੰਡਰਵੀਅਰ, ਬਨਿਆਨ ਅਤੇ ਕੰਡੋਮ ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚ ਵੀ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਜਿੱਥੇ ਉਸਦੀ ਹਾਜ਼ਰੀ ’ਤੇ ਸਵਾਲ ਖੜ੍ਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਇੱਥੇ ਅਸੀਂ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਦੇ ਇਕ ਨਵੇਂ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਾਂਗੇ ਜਿਸ ਵਿਚ ਵਰੁਣ ਧਵਨ, ਹੋਟਲ ਦੀ ਬਾਲਕਨੀ ਤੋਂ, ਥੱਲੇ ਖੜੀ ਗੱਡੀ ਵਿਚ ਚਸ਼ਮਾ ਡਿੱਗਣ ਕਾਰਨ, ਚਸ਼ਮੇ ਲਈ ਦੌੜਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਰਾਹ ਵਿਚ ਆਉਂਦੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਰੁਕਾਵਟਾਂ ਨੂੰ ਪਾਰ ਕਰਨ ਵੇਲੇ, ਇਕ ਥਾਂ ਉਸਦੀ ਸ਼ਾਟਸ ਅੜ ਕੇ, ਫੱਟ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਵਰੁਣ ਧਵਨ, ਸਿਰਫ਼ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਵਿਚ ਹੀ, ਉਸ ਗੱਡੀ ਦੀ ਸੀਟ ’ਤੇ ਜਾ ਪਹੁੰਚ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਗੱਡੀ ਦੀ ਡਰਾਈਵਿੰਗ ਸੀਟ ਤੇ ਬੈਠੀ ਕੁੜੀ ਨੂੰ, ਇਸ਼ਾਰੇ ਨਾਲ ਚਸ਼ਮਾ ਦਿਖਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਵਰੁਣ ਧਵਨ ਨੂੰ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਵਿਚ ਦੇਖ ਕੇ, ਡਰਾਈਵਿੰਗ ਸੀਟ ’ਤੇ ਬੈਠੀ ਕੁੜੀ ਦੇ ਹਾਵ-ਭਾਵ ਬਦਲ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਜਦੋਂ ਵਰੁਣ ਧਵਨ, ਗੱਡੀ ਤੋਂ ਉਤਰਨਣ ਲਗਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਕੁੜੀ ਗੱਡੀ ਨੂੰ ਲਾਕ ਲਗਾ ਕੇ, ਵਰੁਣ ਧਵਨ ਸਮੇਤ ਗੱਡੀ ਨੂੰ ਲੈ ਤੁਰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਵਰੁਣ ਧਵਨ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ: ‘**ਸੁਨੋ ਤੋ ਅਪਨੇ ਦਿਲ ਕੀ, lux cozi**।’ ਹੁਣ ਜੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨੂੰ ਡੀਕੋਡ ਕੀਤਾ ਜਾਏ ਤਾਂ ਡਰਾਈਵਿੰਗ ਸੀਟ ’ਤੇ ਬੈਠੀ ਕੁੜੀ, ਵਰੁਣ ਧਵਨ ਨੂੰ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਵਿਚ ਦੇਖ ਕੇ ਇੰਨੀ ਕਾਮੁਕ ਹੋ ਗਈ ਸੀ ਕਿ ਉਸ ਦਾ ਆਪਣੇ ਉਤੇ ਕਾਬੂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ। ਉਸਦਾ ਦਿਲ ਕੀਤਾ ਕਿ ਵਰੁਣ ਧਵਨ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਨਾਲ ਹੀ ਲੈ ਜਾਵੇ। ਦੂਜੀ ਗੱਲ ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਅੰਦਰ ਪਾਉਣ ਵਾਲੇ ਕਪੜਿਆਂ ਵਿਚ ਕੀ ਔਰਤ ਦੀ ਦੇਹ ਨੂੰ ਵਸਤੂ ਰੂਪ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਨਾ, ਔਰਤ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿਚ ਜਾਂਦਾ ਹੈ? ਜਾਂ ਇਸ ਵਿਗਿਆਪਨ ਰਾਹੀਂ ਇਹ ਸੰਦੇਸ਼ ਦੇਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ ਕਿ lux cozi ਦਾ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਪਾਉਣ ਵਾਲੇ ਹਰ ਮੁੰਡੇ ਤੇ ਕੋਈ ਵੀ ਔਰਤ ਸਿਰਫ ਅੰਡਰਵੀਅਰ ਕਾਰਨ, ਆਪਣਾ ਸਭ ਕੁੱਝ ਵਾਰ ਦੇਵੇਗੀ? ਇਹ ਸਵਾਲ, ਵਿਚਾਰਣਯੋਗ ਹਨ। ਸੋਚਣ ਦੀ ਲੋੜ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਅਜੋਕੇ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਵਿਕਸਤ ਹੋ ਰਿਹਾ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ, ਕਿਸ ਹੱਦ ਤੀਕਰ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੇਖਣ ਵਾਲੇ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ, ਪਲਿਊਟ ਕਰ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਇਸੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ Deodorant ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਨੀ ਬਣਦੀ ਹੈ। Deodorant ਦੇ ਵਿਗਿਆ-ਪਨ ਨੂੰ ਵੱਖ ਵੱਖ ਸਮਿਆਂ ਵਿਚ, ਕਈ ਮਸ਼ਹੂਰ ਮਾਡਲਾਂ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ, ਫ਼ਿਲਮ ਅਦਾਕਾਰਾਂ ਨੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। Wild Stone ਦੇ ਹੀ ਅਨੇਕਾਂ ਵਿਗਿਆਪਨ ਬਣੇ ਹਨ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਮਾਡਲਾਂ ਜਾਂ ਫ਼ਿਲਮ ਅਦਾਕਾਰਾਂ ਦੁਆਰਾ Deodorant

ਲਾਏ ਹੋਏ ਮਰਦਾਂ ਵਲ ਆਕਰਸ਼ਤ ਹੋਣਾ ਦਿਖਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਪਿੱਛੋਂ, ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਗੀਤ ਸਾਡੇ ਕੰਨੀ ਪੈਂਦਾ ਹੈ, ਉਸ ਦੀਆਂ ਕੁੱਝ ਮਿਸਾਲਾਂ ਇੰਝ ਹਨ:

- ਜ਼ਰਾ ਜ਼ਰਾ ਸੀ- ਹਾਏ
  ਕੈਸ਼ੀ ਆਫ਼ਤ ਹੈ
  ਹੁਈ ਹੈ ਇਸ਼ਕ ਕੋ ਆਜ ਮੁਹੱਬਤ- ਹਾਏ।[2] (ਹੁਮਾ ਕੁਰੈਸ਼ੀ ਕਿਸੇ ਮਾਡਲ ਨਾਲ)

- ਤਨ ਮਨ ਤੋਹਪੇ ਵਾਰੇ।[3] (ਦਿਆ ਮਿਰਜ਼ਾ ਸਾਹਮਣੇ ਵਾਲੇ ਘਰ ਦੀ ਬਾਰੀ 'ਤੇ ਖੜ੍ਹੇ ਮੁੰਡੇ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ)

- ਸਾਂਸ ਅਟਕ ਗਈ- ਲੋ ਜੀ ਛਣਕ ਗਈ
  ਮਹਿਕਣ ਲਾਗੀ ਮੈਂ
  ਭੂਲ ਭਟਕ ਗਈ- ਤੋਂ ਮੈਂ ਸਿਮਟ ਗਈ
  ਭਟਕਣ ਲਾਗੀ ਮੈਂ
  ਓ ਬਹਿਕਣ ਲਾਗੀ ਮੈਂ
  ਅਬ ਦੁਨੀਆ ਬਹਿਕੇਗੀ- Wild Stone ਕੇ ਸਾਥ।[4] (ਕਿਸੇ ਮਾਡਲ ਦੁਆਰਾ)

ਇਥੇ ਇਕ ਨਵੇਂ ਵਿਗਿਆਪਨ Layer's Shot ਦਾ ਵੀ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਨਾ ਚਾਵਾਂਗੀ। ਮਸ਼ਹੂਰ ਅਭਿਨੇਤਾ ਅਕਸ਼ੇ ਕੁਮਾਰ Layer's Shot ਲਾ ਕੇ, ਇਕ ਡਿਸਕੋ ਵਿਚ ਨੱਚਦਾ ਹੋਇਆ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਅੱਗੋਂ ਹੁਮਾ ਕੁਰੈਸ਼ੀ, ਉਸ ਵਲ ਬਿੱਲੀਆਂ ਵਾਂਗ ਲਪਕਦੀ ਹੈ। ਪਿੱਛੇ ਗੀਤ ਚਲਦਾ ਹੈ:

- ਖਿੱਚੀ ਚਲੀ ਆਉਂਦੀ ਹੈ
  ਕੁੜੀ ਖਿੱਚੀ ਚਲੀ ਆਉਂਦੀ ਹੈ
  ਅਕਸ਼ੇ ਕੁਮਾਰ ਬੋਲਦਾ ਹੈ- ਕਾਟੇਗੀ ਕਿਆ?
  ਕੁੜੀ ਚੱਕ ਮਾਰਨ ਨੂੰ ਫਿਰਦੀ ਹੈ
  ਅਕਸ਼ੇ ਕੁਮਾਰ- ਕਾਟੇਗੀ ਕਿਆ?

ਜ਼ਿਕਰਯੋਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਵਕਤ ਸੰਸਾਰ ਭਰ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੇ ਸਮਾਨਤਾ ਲਈ ਅੰਦੋਲਨ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ। ਨਾਰੀ ਦੇ ਸਮਾਜ-ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਤੇ ਆਰਥਕ ਹੱਕਾਂ ਦੇ ਪੱਖ ਵਿਚ ਆਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨ ਲਈ, ਉਸ ਨੂੰ ਮਰਦ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਸਨਮਾਣ ਦਿਵਾਉਣ ਲਈ ਅਤੇ ਜੈਂਡਰ ਈਕੂਐਲਟੀ (Gender Equality) ਪ੍ਰਤਿ ਚੇਤਨਾ ਦਿਵਾਉਣ ਲਈ, ਨਾਰੀਵਾਦੀ-ਚਿੰਤਨ ਜ਼ੋਰ ਪਕੜ ਰਿਹੈ। ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਨੂੰ ਗਹੁ ਨਾਲ ਦੇਖੀਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਚਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਜਾਂ ਬਰਾਬਰੀ ਦਾ ਜੋ ਬਿੰਬ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਨੂੰ, ਸੈਕਸ ਜੀਵਨ ਤਕ ਸੀਮਿਤ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ, ਟੀ. ਵੀ. 'ਤੇ ਇਕ ਮੋਟਰ-ਸਾਈਕਲ ਦਾ ਵਿਗਿਆਪਨ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿਚ ਇਕ ਔਰਤ, ਮੋਟਰ-ਸਾਈਕਲ ਤੇ ਲੰਮੀ ਪਈ ਹੋਈ ਦਿਖਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਅਚਾਨਕ, ਉਹ ਮੋਟਰ-ਸਾਈਕਲ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਬਦਲ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਉਸੀ ਦੌਰਾਨ, ਉਸ ਮੋਟਰ-ਸਾਈਕਲ ਤੇ ਇਕ ਪੁਰਸ਼ ਸਵਾਰ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੋਟਰ-ਸਾਈਕਲ ਦੀ ਤੁਲਨਾ, ਉਸ ਔਰਤ ਨਾਲ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ, ਜਿਸ 'ਤੇ ਸਵਾਰ ਹੋ ਕੇ ਮਰਦ, ਅਨੰਦਮਈ ਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ਵਿਗਿਆਪਨ ਏਜੰਸੀਆਂ, ਏਹੋ ਜਿਹੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦੇ ਤਹਿਤ ਹੀ ਵਿ-ਗਆਪਨ ਬਣਾਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਉਂ, ਇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ 'ਬਿਊਟੀ ਮਿਥ' ਸਿਰਜ ਕੇ, ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਜੇਬਾਂ 'ਚੋਂ ਪੈਸੇ ਕੱਢਵਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਖ਼ੂਬਸੂਰਤੀ/ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੇ ਜਿਹੜੇ ਮਾਪਦੰਡ, ਇਹ ਏਜੰਸੀਆਂ ਸਿਰਜਦੀਆਂ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਬਹੁਤੇ ਵਿਗਿਆਪਨ, ਅਸੀਂ ਰਹ ਰੋਜ਼ ਟੀ. ਵੀ. ਚੈਨਲਾਂ 'ਤੇ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਵਿਚਾਰ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਲਈ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਗੋਰਾ ਬਣਾਉਣ ਵਾਲੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਕ੍ਰੀਮਾਂ, ਫੇਸ ਵਾਸ਼, ਸ਼ੈਂਪੂ, ਕਪੜੇ, ਆਈ-ਬਰੋਜ਼, ਆਈ-ਲਾਈਨਰ, ਕੱਜਲ, ਆਈ ਸ਼ੈਡੋ, ਬੇਸ ਮੇਕਅਪ, ਕਲਿੰਜ਼ਰ, ਲਿਪ ਗਲਾਸ, ਲਿਪਸਟਿਕ, ਨੇਲਪਾਲਸ਼ ਆਦਿ ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਨੂੰ ਲਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਛੁੱਟ, ਐੱਕਸਰਸਾਈਜ਼ ਬਾਈਕ, ਸਿਲੀਕਾਨ ਬ੍ਰੈਸਟ, ਮੋਟਾਪਾ ਘੱਟ ਦਿਖਾਉਣ ਦੀਆਂ ਬੈ-ਲਟਾਂ ਵਰਗੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ ਨਾਲ ਤਾਂ, ਬਾਜ਼ਾਰ ਭਰੇ ਪਏ ਹਨ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਨਾਰੀ-ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ,

ਨਿਓਮੀ ਵੂਲਫ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ **ਬਿਊਟੀ ਮਿਥ (Beauty Myth)** ਵਿਚ ਲਿਖਦੀ ਹੈ, "ਸੁੰਦਰਤਾ ਵਧਾਉਣ ਵਾਲੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ, ਨਾਰੀ ਨੂੰ, ਇਕ ਭੋਗਣ ਵਾਲੀ ਵਸਤੂ ਬਣਾਉਣ ਦਾ ਤਰੀਕਾ ਹੈ ਇਸ ਵਿਚ ਫੈਸ਼ਨ ਡਿਜ਼ਾਈਨਰਸ, ਕਾਸ-ਮੈਟਿਕਸ ਇੰਡਸਟ੍ਰੀ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਏਜੰਸੀਆਂ, ਹਾਲੀਵੁੱਡ/ਬਾਲੀਵੁੱਡ ਦੇ ਸੌਦਾਗਰ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਜਗਤ ਦੇ ਮਾਲਕ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹਨ। ਇਹ ਸਿਰਫ ਮਿਥ ਨਹੀਂ, ਸਗੋਂ ਸੋਚੀ-ਸਮਝੀ ਸਮਾਜਕ ਸੰਰਚਨਾ ਹੈ।"[5] ਅਸਲ ਵਿਚ ਸੁੰਦਰਤਾ ਲਈ ਇਹ ਧਾਰਣਾ, ਮਰਦ-ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਮਰਦ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੋਹਾਂ ਦੁਆਰਾ ਮਿਲ ਕੇ ਤਿਆਰ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਉਹ ਹੀ ਇਹ ਤੈਅ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਔਰਤ/ਨਾਰੀ ਦਾ ਸਰੀਰ ਕਿਹੋ ਜਿਹਾ ਹੋਵੇ। ਪ੍ਰਚਾਰ ਅਤੇ ਸਾਮਗ੍ਰੀ ਦਾ ਸਾਰਾ ਕਾਰੋਬਾਰ, ਇਨ੍ਹਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਦਖਲ ਨਾਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਚਾਰ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਪਰੋਕਤ ਵਸਤੂਆਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਔਰਤਾਂ, ਸੁਹਣੀਆਂ ਅਤੇ ਪਹਿਲਾਂ ਤੋਂ ਹੀ ਸੁਹਣੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਹੋਰ ਸੋਹਣੀਆਂ ਬਣ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਔਰਤਾਂ ਸੁੰਦਰ ਬਣਨ ਲਈ ਅਤੇ 'ਵਸਤੂ' ਬਣਨ ਲਈ, ਆਪਣੀ ਜਾਨ ਲੜਾ ਦੇਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇੰਝ, ਉਸਨੂੰ ਪਤਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਚਲਦਾ ਕਿ ਉਹ ਉਪਭੋਗੀ ਹੈ ਜਾਂ ਭੋਗੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਵਸਤੂ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਤਸਲੀਮਾ ਨਸਰੀਨ, ਆਪਣੇ ਇਕ ਲੇਖ **ਔਰਤ ਸ਼ਰੀਰ** ਵਿਚ ਲਿਖਦੀ ਹੈ, "ਔਰਤ ਸੁੰਦਰ ਕਿਵੇਂ ਬਣੇ, ਇਸ ਸੰਬੰਧੀ ਸੈਂਕੜੇ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰ, ਚਾਰੋ ਪਾਸੇ ਛਾਏ ਹੋਏ ਹਨ। ਸਿਨੇਮੇ ਵਿਚ, ਟੀ.ਵੀ. ਵਿਚ, ਬਿਲਬੋਰਡ ਵਿਚ, ਪੱਤਰ-ਪੱਤਰਕਾਵਾਂ ਵਿਚ, ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੀਆਂ ਭੁੱਲ-ਭੁਲੱਈਆ ਵਿਚ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ, ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਫਸਾ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਸਮੁੱਚੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ, ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਭਰ ਦੀ ਸਾਰੀ ਕਮਾਈ, ਸੁੰਦਰਤਾ-ਚਰਚਾ ਵਿਚ ਹੀ ਖ਼ਤਮ ਕਰ ਦੇਣੀ ਹੋਵੇਗੀ। ਆਪਣੇ ਅਧਿਕਾਰ-ਅਣਅਧਿਕਾਰ ਸੰਬੰਧੀ ਸੋਚਣ ਲਈ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਫੁਰਸਤ ਹੀ ਨਹੀਂ ਮਿਲੇਗੀ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ, ਬਚਾ ਕੇ ਰੱਖੇ ਰੁਪਏ ਵੀ, ਸੁੰਦਰਤਾ-ਚਰਚਾ ਵਿਚ, ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਫੁਰਰ ਹੋ ਜਾਣਗੇ ਕਿ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦਾ ਆਖ਼ਰੀ ਸਹਾਰਾ ਵੀ ਕੁੱਝ ਨਹੀਂ ਬਚੇਗਾ। ਸਾਡੀਆਂ ਬੱਚੀਆਂ-ਕਿਸ਼ੋਰੀਆਂ-ਜਵਾਨ ਇਸ ਜਾਲ ਵਿਚ ਫਸ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਜੇ ਗੌਰ ਨਾਲ ਸਰਵੇਖਣ ਕੀਤਾ ਜਾਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਚਲੇਗਾ ਕਿ ਨੱਬੇ ਪ੍ਰਤੀਸ਼ਤ ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਖ਼ਿਆਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਸੁੰਦਰੀਆਂ ਨਹੀਂ ਹਨ।.... ਆਪਣੇ ਸ਼ਰੀਰ ਸੰਬੰਧੀ, ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਅੰਗ ਨੂੰ ਲੈ ਕੇ ਔਰਤਾਂ ਵਿਚ ਅਸੰਤੋਖ ਅਤੇ ਗਲਾਨੀ ਦਿਨੋ ਦਿਨ ਵਧ ਰਹੀ ਹੈ। ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਆਪਣਾ ਆਤਮਵਿਸ਼ਵਾਸ ਘੱਟ ਰ ਦੇਣ ਦੀ ਰਾਜਨੀਤੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ੋਰਾ ਤੇ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਬਾਰੇ 'ਚ ਆਤਮਵਿਸ਼ਵਾਸ ਹੀ ਨਾ ਹੋਵੇ, ਫ਼ਿਕਰ-ਪਰੇਸ਼ਾਨੀ ਹੀ ਜੇ ਦੂਰ ਨਾ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਮਰਦਤੰਤਰ ਨੂੰ ਚੁਣੌਤੀ ਦੇਣ ਦਾ ਹੌਂਸਲਾ ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀ ਦੋਵੇਂ ਹੀ ਕਪੂਰ ਵਾਂਗ ਉੱਡ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੇ ਸਵਾਲ ਤੇ ਜ਼ਰੂਰੀ ਚੇਤਨਾ ਵੀ ਸੜ-ਗਲ ਕੇ ਨਸ਼ਟ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।"[6]

ਇਸ ਸਭ ਕੁੱਝ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ, ਵਿਗਿਆਪਨ ਜਗਤ ਵਿਚ ਥੋੜ੍ਹੇ-ਬਹੁਤ ਅੰਤਰ ਨਾਲ, ਥੋੜ੍ਹਾ ਜਿਹਾ ਬਦਲਾਅ ਜ਼ਰੂਰ ਆਇਆ ਹੈ। ਔਰਤ ਦਾ ਪੱਖ ਪੂਰਨ ਵਾਲੇ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ, ਬਹੁਤੀ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤਾਂ ਨਹੀਂ, ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਅਣਗੌਲਿਆਂ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਕੁੱਝ ਸਮੇਂ ਪਹਿਲਾਂ ਤਕ Red Label Natural Care ਦਾ ਵਿਗਿਆਪਨ ਆਉਂਦਾ ਸੀ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਪਤੀ Employee of the Year ਦਾ ਕਪ ਲੈ ਕੇ, ਖੁਸ਼ੀ ਖੁਸ਼ੀ ਘਰ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਪੂਰਾ ਸਾਲ ਬਿਨਾਂ ਛੁੱਟੀ ਲਏ ਕੰਮ 'ਤੇ ਜਾਣ ਉਤੇ ਮਾਣ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਆਖਦਾ ਹੈ- ਕਮਾਲ ਦਾ ਕੱਪ ਹੈ ਨਾ, ਅੱਗੋਂ ਉਸਦੀ ਬੇਟੀ ਜਵਾਬ ਦਿੰਦੀ ਹੈ, "ਪਾਪਾ, ਉਂਝ ਇਹ ਮੰਮੀ ਦੇ ਕਪ ਦਾ ਕਮਾਲ ਹੈ।"[7] ਇਸ ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚ, ਧੀਮੇਂ ਸੁਰ ਵਿਚ ਹੀ ਸਹੀ, ਔਰਤ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਪਰਿਵਾਰਕ ਸੇਵਾ ਦਾ, ਮੁੱਲ ਪਾਉਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਨੂੰ, ਨਵੇਂ ਅਰਥਾਂ ਵਿਚ ਪਰਿਭਾਸ਼ਤ ਕਰਦੀ ਸਕੂਟੀ (Pleasure) ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ, ਪ੍ਰਿਯੰਕਾ ਚੋਪੜਾ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ: Why should boys have all the fun[8] ਜਾਂ ਇਸ ਤੋਂ ਵੀ ਅੱਗੇ ਵੱਧ ਕੇ Oriflame ਦੇ ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚ ਕਲਕੀ ਕੋਚੀ, ਔਰਤ ਮਨ ਦੀ ਖ਼ੂਬਸੂਰਤੀ ਨੂੰ All I need is a chance [9] (ਮੈਨੂੰ ਬਸ ਇਕ ਮੌਕਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ) ਦੇ ਵਾਕ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇੰਝ ਜਦੋਂ ਔਰਤ ਨੂੰ ਇਕ ਮੌਕਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਤਾਂ Airtel ਦਾ ਵਿਗਿਆਪਨ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿਚ, ਇਕ ਪਹਾੜਣ ਕੁੜੀ, ਦਫ਼ਤਰੀ ਕੰਮ ਲਈ, ਆਪਣੇ ਪਿੰਡ ਤੋਂ ਦੂਰ ਅਜਿਹੇ ਸ਼ਹਿਰ ਦੇ ਹੋਟਲ ਵਿਚ ਰੁਕਦੀ ਹੈ ਜਿਥੋਂ ਸਮੰਦਰ ਸਾਫ ਨਜ਼ਰੀ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਮਾਂ-ਪਿਉ ਨਾਲ video call ਰਾਹੀਂ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ- ਪਾਪਾ, ਤੁਸੀਂ ਕਹਿੰਦੇ ਸੀ ਨਾ, ਸਮੁੰਦਰ ਦੀ ਹਵਾ ਪਹਾੜਾਂ ਤਕ ਨਹੀਂ ਪਹੁੰਚਦੀ। ਅੱਗੋਂ ਉਸਦਾ ਪਿਉ ਜਵਾਬ ਦਿੰਦਾ ਹੈ- "ਅੱਜ ਪਹਾੜ, ਸਮੁੰਦਰ ਕੋਲ ਪਹੁੰਚ ਗਿਆ।" ਠੀਕ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ Titan Raga ਦਾ ਵਿਗਿਆਪਨ, 'ਸਿੰਗਲ ਵੂਮਨ' ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਵਿਗਿਆਪਨ ਵਿਚਲੀ ਔਰਤ, ਇਕ ਰੈਸਟਰਾਂ ਵਿਚ, ਅਚਾਨਕ ਆਪਣੇ ਛੱਡੇ ਹੋਏ ਪਤੀ ਨੂੰ ਮਿਲਦੀ ਹੈ। ਪਤੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵੱਖ ਹੋਣ ਦਾ ਕਾਰਨ, ਉਸਦੀ ਨੌਕਰੀ ਨੂੰ ਮੰਨਦਾ ਹੋਇਆ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ, ਮੈਂ ਕਿਵੇਂ ਨੌਕਰੀ ਛੱਡ ਸਕਦਾ ਸੀ ਆਖਿਰਕਾਰ ਮੈਂ ਮਰਦ ਹਾਂ, ਔਰਤ ਅੱਗੋਂ ਜਵਾਬ ਦੇਂਦੀ ਹੋਈ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ- "ਅਸਲ ਵਿਚ ਤੁਸੀਂ, ਠੀਕ ਬੋਲ ਰਹੇ ਹੋ, ਤੁਸੀਂ ਅੱਜ ਵੀ ਉਂਝ ਹੀ ਹੋ, ਜਿਹੋ ਜਿਹਾ ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਛੱਡਿਆ ਸੀ।" ਪਿੱਛੋਂ voice over ਹੁੰਦਾ ਹੈ, **ਹੱਕ ਨਾਲ ਨਵਾਂ ਰਿਸ਼ਤਾ- Titan Raga।**[10]

ਸਮੁੱਚੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਵਿਗਿਆਪਨਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੇ ਦੋ ਰੂਪ ਨਜ਼ਰੀਂ ਪੈਂਦੇ ਹਨ। ਇਕ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦਾ ਉੱਤੇਜਕ ਤੇ ਅਸ਼ਲੀਲ ਰੂਪ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਦੂਜਾ, ਪਰੰਪਰਕ, ਜਗੀਰੂ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਣ ਵਾਲਾ ਤੇ ਪਿੱਤਰਸੱਤਾ ਨੂੰ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖਣ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਇਸ ਸਭ ਦੇ ਮੂਲ ਵਿਚ, ਲਿੰਗ ਆਧਾਰਤ ਕੰਮ-ਵੰਡ ਨੂੰ ਸਪਸ਼ਟ

ਵੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਉਤਪਾਦਕਾਂ, ਵਪਾਰੀਆਂ, ਵਿਗਿਆਪਨਸਿਰਜਕਾਂ ਅਤੇ ਆਪ ਔਰਤ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਵਿਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਆਉਣ ਨਾਲ ਹੀ, ਅਸ਼ਲੀਲ ਅਤੇ ਘੱਟੀਆ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਤੋਂ, ਨਿਜਾਤ ਮਿਲ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਉਪਰੋਕਤ ਸਾਰੀ ਚਰਚਾ ਵਿਚ, ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਅੰਦਰ ਕੁੱਝ ਬਦਲਾਅ ਤਾਂ ਆਏ ਲੱਗਦੇ ਹਨ। ਵੇਖਣ ਵਾਲੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦਾ ਪੱਖ ਪੂਰਨ ਵਾਲੇ ਵਿਗਿਆਪਨ, ਭਾਵੇਂ ਘੱਟ ਗਿਣਤੀ ਵਿਚ ਹਨ, ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਉਪਰ ਕੰਮ ਆਰੰਭ ਹੋ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ, ਇਸ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਇਕ ਨਵੀਂ ਉਮੀਦ ਵਜੋਂ ਲਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

## ਹਵਾਲੇ


1. ਮਨਜੀਤ ਸਿੰਘ (ਡਾ.), ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ: ਸਾਹਿਤਕ ਪ੍ਰਤਿਉੱਤਰ, ਪੰਨਾ: 21
2. https://www.youtube.com/watch?v=VhCgQGrGd9w&t=394s
3. ibid
4. ibid
5. देवेन्द्र इस्सर, स्त्री मुक्ति के प्रश्न, पन्ना : 34
6. ਤਸਲੀਮਾ ਨਸਰੀਨ, ਔਰਤ ਦਾ ਕੋਈ ਦੇਸ਼ ਨਹੀਂ, ਅਨੁ. ਡਾ. ਜਸਵੀਰ ਕੌਰ, ਪੰਨੇ: 115-116
7. https://www.youtube.com/watch?v=6KQB3Ai258o
8. https://www.youtube.com/watch?v=z44vMNZwPeA
9. https://www.youtube.com/watch?v=9xIjfD6cd6E&t=234s
10. https://www.youtube.com/watch?v=zXRobOjVI9s

# ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਪੁਸਤਕ ਦੀ ਆਲੋਚਨਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ

ਸੰਦੀਪ ਕੌਰ

ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਸੇਵਾਵਾਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਵੀ ਆਪਣੀ ਇੱਕ ਵਿਲੱਖਣ ਪਛਾਣ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਹੁਣ ਤੱਕ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਝੋਲੀ ਵਿਚ 'ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਲੋਕ-ਨਾਟ ਪਰੰ-ਪਰਾ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ', 'ਮੀਡੀਆ: ਵਿਹਾਰਕ ਅਧਿਐਨ', 'ਬਲਵੰਤ ਗਾਰਗੀ: ਭਾਰਤੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਨਿਰਮਾਤਾ', 'ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ', 'ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਲੋਕ-ਨਾਟ ਪਰੰਪਰਾ ਏਵਮ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ' ਅਤੇ ਅਨੁ-ਵਾਦ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਕਈ ਪੁਸਤਕਾਂ ਵੀ ਸੰਪਾਦਤ ਕੀਤੀਆਂ ਹਨ। ਉਪਰੋਕਤ ਆਲੋਚਨਾ ਪੁਸਤਕਾਂ ਵਿਚੋਂ 'ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ' ਪੁਸਤਕ ਨੂੰ ਮੈਂ ਆਪਣੇ ਮੈਟਾ ਅਧਿਐਨ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਜਦ ਅਸੀਂ ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਦੇ ਸਿਰਲੇਖ ਵੱਲ ਝਾਤ ਮਾਰਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਸਾਨੂੰ ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਮੀਡੀਆ+ਸਭਿਆਚਾਰਕ+ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਤਿੱਕੜੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਿੱਕੜੀ ਵਿਚੋਂ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਸਹਾਰਾ ਲੈ ਕੇ ਕਿਵੇਂ ਸਾ-ਡੀਆਂ ਸਮਾਜਿਕ/ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਢਾਅ ਲਾਉਂਦਾ ਹੈ? ਜਾਂ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਰੂਪਾਂ ਰਾਹੀਂ ਨਕਾਰਤਮਕ ਅਤੇ ਸਕਾਰਾਤਮਕ ਪਹਿਲੂਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਲੇਖਕ ਦੇ ਕਿਵੇਂ ਸੰਸੇ/ਫ਼ਿਕਰ/ਝੋਰੇ ਉਜਾਗਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਉਲੇਖ ਮੈਂ ਆਪਣੇ ਹੱਥਲੇ ਪਰਚੇ ਵਿਚ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਾਂਗੀ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵਰਤਮਾਨ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਹੀ ਮੁੱਲ ਹੈ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਰਚਿਤ ਮੀਡੀਆ : ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਆਲੋਚਨਾ ਪੁਸਤਕ ਵਿਚ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਬਲੌਗਿੰਗ ਤੱਕ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਸਨਮੁਖ ਚੁਣੌਤੀਆਂ ਤੋਂ ਵਾਕਿਫ਼ ਕਰਾਉਂਦੇ ਹੋਏ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਬੇਸ਼ੱਕ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦਾ ਚੌਥਾ ਥੰਮ ਹੈ ਪਰ ਇਸ ਥੰਮ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ ਭ੍ਰਿਸ਼ਟਾਚਾਰ ਅਤੇ ਸਿਆਸੀ ਦਬਾਅ ਰਾਹੀਂ ਖੋਖਲੀਆਂ ਹੋ ਚੁੱਕੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਵਿਚ ਕੋਈ ਸ਼ੱਕ ਨਹੀਂ ਕਿ ਅੱਜ ਭਾਰਤ ਦੀ ਵਾਗਡੋਰ ਬੁਰਜੂਆ ਸ਼੍ਰੇਣੀ ਦੇ ਹੱਥਾਂ ਵਿਚ ਹੈ ਜੋ ਹਰ ਚੀਜ਼ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਅਨੁਸਾਰ ਨਿਯੰਤਰਣ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਬੜੇ ਢੁੱਕਵੇਂ ਜਾਪਦੇ ਹਨ ਕਿ **"ਸਾਡਾ ਮੀਡੀਆ ਹੁਣ ਵਿਦਵਾਨ ਸੰਪਾਦਕ ਨਹੀਂ ਚਲਾ ਰਹੇ ਸਗੋਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਚਲਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਪੰਨੇ ਜੋ ਹਰ ਅਖ਼ਬਾਰ ਦਾ face ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਅੱਧੇ ਤੋਂ ਵੱਧ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਾਂ ਦੀ ਭੇਟ ਚੜ੍ਹ ਰਹੇ ਹਨ।"**[1] ਇਸ ਗੱਲ ਤੋਂ ਇਹ ਵੀ ਸੰਕੇਤ ਮਿਲਦੇ ਹਨ ਕਿ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦਾ ਚੌਥਾ ਥੰਮ ਮੰਨਿਆ ਜਾਣ ਵਾਲਾ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਬਿੰਦੂ ਸਿਰਫ ਤੇ ਸਿਰਫ ਮੁਨਾਫ਼ਾ ਰਹਿ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਵੀ ਸਾਨੂੰ ਭਲੀ ਭਾਂਤ ਅਹਿਸਾਸ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਅੱਜ ਮੀਡੀਆ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰ ਦੇਣ ਦੀ ਥਾਂ paid ਖ਼ਬਰਾਂ ਦੇਣ ਕਰਕੇ ਸਿਆਸੀ ਪਾਰਟੀਆਂ ਦੀ ਵਕਾਲਤ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਵਿਚ paid ਖ਼ਬਰਾਂ ਛਾਪਣ ਵਾਲੇ ਪੱਤਰਕਾਰ/ਸੰਪਾਦਕ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨਾਲ ਖਿਲਵਾੜ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਹਰ ਸ਼ਬਦ ਬੜਾ ਸਤਿਕਾਰਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ/ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਵਿਚ ਖ਼ਬਰਾਂ ਛਪਾਉਣ ਵੇਲੇ ਪੱਤਰਕਾਰ/ਸੰਪਾਦਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੈਸਿਆਂ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਨਾ ਇਸ ਸਤਿਕਾਰ ਨੂੰ ਢਾਅ ਲਾਉਣ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਹੈ। ਆਮ ਲੋਕ ਅਖ਼ਬਾਰ ਦੇ ਅੱਖਰ ਅੱਖਰ ਉੱਤੇ ਯਕੀਨ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਕੀ ਇਹ ਪੱਤਰਕਾਰ ਅਤੇ ਸੰਪਾਦਕ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਯਕੀਨ ਉੱਤੇ ਖਰੇ ਉਤਰਦੇ ਹਨ? ਜਾਂ ਸਿਰਫ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਵਿਸ਼ਵਾਸਘਾਤ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ? ਜੇ ਇਹ ਸਭ ਕੁਝ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਸ ਲਈ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਕੌਣ ਹੈ? ਸਿਆਸੀ ਦਬਾਅ, ਪੱਤਰਕਾਰ, ਸੰਪਾਦਕ ਜਾਂ ਆਮ ਲੋਕ। ਸਵਾਲ ਇਹ ਵੀ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਪ੍ਰਿੰਟ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਇਲੈਕ-ਟ੍ਰੋਨਿਕ ਮੀਡੀਆ ਸੁਤੰਤਰ ਹੈ? ਅੱਜ ਭਾਰਤ ਗ਼ਰੀਬੀ, ਭੁੱਖਮਰੀ, ਭੈਅ ਅਤੇ ਭ੍ਰਿਸ਼ਟਾਚਾਰ ਵਰਗੀਆਂ ਅਲਾਮਤਾਂ ਵਿਚੋਂ ਦੀ ਗੁਜ਼ਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਭੈਅ ਭਰੇ ਮਾਹੌਲ ਵਿਚ ਨਾ ਸੰਪਾਦਕ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਪੱਤਰਕਾਰ ਸੁਰੱਖਿਅਤ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਇਸ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਡਾ. ਅਨੂਪ ਸਿੰਘ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਸੰਸਾਰ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਚਿੰਤਕ ਅਲਬਰਟ ਕਾਮੂ ਦੀ ਰਾਏ ਰੱਖੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿ " ਆਜ਼ਾਦ ਪ੍ਰੈੱਸ ਜਾਂ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਚੰਗੀ ਵੀ ਹੋ ਸਕਦੀ ਅਤੇ ਮਾੜੀ ਵੀ ਪਰ ਇੱਕ ਗੱਲ ਪੱਕੀ ਹੈ ਕਿ ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੋਂ ਬਗ਼ੈਰ ਪ੍ਰੈੱਸ ਸਿਰਫ਼ ਮਾੜੀ ਹੀ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ।" ਇਸ ਲਈ ਆਜ਼ਾਦ ਪ੍ਰੈੱਸ ਦਾ ਹੋਣਾ ਅਤਿ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਪਰ ਮਸਲਾ ਫੇਰ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਆਜ਼ਾਦ ਪ੍ਰੈੱਸ ਜਾਂ ਪੱਤਰਕਾਰੀ ਆਪਣੀ ਇਮਾਨਦਾਰੀ ਦਿਖਾਉਣ ਦੀ ਜ਼ੁਰੱਅਤ ਕਰਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਨੂੰ ਜੋ ਦੁਸ਼ਵਾਰੀਆਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ, ਉਸ

ਦੇ ਤੱਥ ਬੀਤੇ ਹੋਏ ਸਮੇਂ ਵਿਚੋਂ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਪਛਾਣੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਜਿਸ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਡਾ. ਅਨੂਪ ਸਿੰਘ ਵੇਰਵਾ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ "ਪੱਤਰਕਾਰ ਸੁਰੱਖਿਆ ਕਮੇਟੀ ਦੀ ਰਿਪੋਰਟ ਅਨੁਸਾਰ, 1992 ਤੋਂ 31 ਦਸੰਬਰ 2017 ਤੱਕ ਭਾਰਤ ਵਿਚ 27 ਪੱਤਰਕਾਰ ਮਾਰੇ ਗਏ।" (ਡਾ. ਅਨੂਪ ਸਿੰਘ, ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 24 ਅਪ੍ਰੈਲ, 2018) ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਸਾਡੇ ਕੋਲ ਕਰਨਾਟਕ ਵਿਚ ਬੰਗਲੋਰ ਦੀ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਪੱਤਰਕਾਰ ਗੌਰੀ ਲੰਕੇਸ਼ ਦੀ ਹੱਤਿਆ (5 ਸਤੰਬਰ, 2017) ਅਤੇ ਐਨ. ਡੀ. ਟੀ. ਵੀ. ਦੇ ਪੱਤਰਕਾਰ ਰਵੀਸ਼ ਕੁਮਾਰ ਨੂੰ ਜਾਨੋਂ ਮਾਰਨ ਦੀਆਂ ਧਮਕੀਆਂ ਸੁਤੰਤਰ ਪ੍ਰੈੱਸ ਨੂੰ ਢਾਹ ਲਾਉਣ ਦਾ ਜਿਉਂਦਾ ਜਾਗਦਾ ਸਬੂਤ ਹਨ। ਜੇਕਰ ਪੱਤਰਕਾਰ ਜਾਂ ਸੰਪਾਦਕ ਪੈਸੇ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਖ਼ਬਰਾਂ ਨੂੰ ਪਰੋਸਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਫਿਰ ਜ਼ਿਹਨ 'ਚ ਇਹ ਸਵਾਲ ਪੈਦਾ ਹੋਣਾ ਵੀ ਸੁਭਾਵਿਕ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦਾ ਚੌਥਾ ਥੰਮ ਮੰਨਿਆ ਜਾਣ ਵਾਲਾ ਮੀਡੀਆ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰ ਪਾਵੇਗਾ? ਕੀ ਆਮ ਲੋਕ ਆਪਣੀਆਂ ਦੁੱਖ ਤਖਲੀਫਾਂ, ਸੰਕਟ, ਰੋਜ਼ਮੱਰਾ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨਾਲ ਖਹਿ ਕੇ ਲੰਘਣ ਵਾਲੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਤੋਂ ਉਤਪੰਨ ਹੁੰਦੇ ਦੁੱਖਾਂ ਤੋਂ ਨਿਜ਼ਾਤ ਪਾ ਸਕਣਗੇ? ਇਹ ਸਵਾਲ ਸਾਡੇ ਸਭ ਦੇ ਸਨਮੁਖ ਹਨ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਭਵਿੱਖਮੁਖੀ ਹੱਲ ਲੱਭਣਾ ਬਹੁਤ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।

ਮੀਡੀਆ ਵਿਚ ਸਮਾਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਸਾਰਿਤ ਕਰਨ ਦੀ ਘਟੌਤੀ ਇਸ ਕਰਕੇ ਵੀ ਆਈ ਹੈ ਕਿ ਹਰ ਸਮਾਚਾਰ ਚੈਨਲ ਆਪਣੀ ਟੀ.ਆਰ.ਪੀ. ਵਧਾਉਣ ਲਈ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਮਸ਼ਹੂਰ ਮਾਡਲਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਚਾਲ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਬਣਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ ਮਾਨਵੀ ਦੁੱਖ-ਦਰਦ ਨਾਲੋਂ ਸਨਸਨੀਖੇਜ਼ ਖ਼ਬਰਾਂ ਅਤਿ ਜ਼ਰੂਰੀ ਬਣ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ **" ਰਾਖੀ ਸਾਵੰਤ/ਮੀਕਾ ਦੀ ਘਟਨਾ ਸਾਡੇ ਟੀ.ਵੀ. ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਲਈ ਵੱਡੀ ਘਟਨਾ ਹੈ। ਇੱਕ ਬੱਚਾ ਸੌ ਫੁੱਟ ਡੂੰਘੀ ਖਾਈ ਵਿਚ ਡਿੱਗ ਜਾਏ, ਤਾਂ 12-12 ਘੰਟੇ ਲਾਈਵ ਕਵਰੇਜ਼ ਦੇਖੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਪਰ ਮਹਾਂਰਾਸ਼ਟਰ ਤੇ ਪੰਜਾਬ ਆਰਥਿਕ ਸੰਕਟ ਨਾਲ ਘਿਰੇ ਕਿਸਾਨਾਂ ਦੀਆਂ ਖ਼ੁਦਕੁਸ਼ੀਆਂ ਨੂੰ ਟੀ.ਵੀ. ਖ਼ਬਰਾਂ ਵਿਚ 10 ਸਕਿੰਟ ਮਿਲਣੇ ਮੁਮਕਿਨ ਨਹੀਂ।"**[2] ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਡੇ ਇੰਟਰਟੇਨਮੈਂਟ ਚੈਨਲ ਸਿਰਫ਼ ਤੇ ਸਿਰਫ਼ ਸੁਪਨੇ ਵੇਚ ਰਹੇ ਹਨ। ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਰਿਆਲਟੀ-ਸ਼ੋਅ ਰਾਹੀਂ ਸੁਪਨਮਈ ਸੰਸਰ ਸਿਰਜ ਕੇ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਸੁਪਨਿਆਂ ਨਾਲ ਖੇਡ ਰਹੇ ਹਨ। ਜਦ ਇਨ੍ਹਾਂ ਚੈਨਲਾਂ ਨੂੰ ਟੀ.ਆਰ.ਪੀ. ਡਿੱਗਣ ਦਾ ਖ਼ਤਰਾ ਹੁੰਦਾ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਮਸ਼ਹੂਰ ਅਦਾਕਾਰ/ ਅਦਕਾਰਾ ਦੀ ਐਂਟਰੀ ਰਾਹੀਂ ਦੁਬਾਰਾ ਲਿਆ ਕੇ ਹੰਗਾਮੇ ਖੜ੍ਹੇ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਇਸ ਘਟਨਾਕ੍ਰਮ ਉੱਤੇ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਦੀ ਨੀਤੀ ਭਾਰੂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਸਾਮਰਾਜੀ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਸਥਾਪਤ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਸੈਕਸ ਦਾ ਵੀ ਬਾਜ਼ਾਰੀਕਰਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਸੈਕਸ ਨੂੰ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰ, ਗੀਤ ਅਤੇ ਫ਼ਿਲਮ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਸਾਡੇ ਸਾਹਮਣੇ ਪਰੋਸਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਉਦਾਹਰਣਾਂ ਸਾਡੇ ਸਨਮੁੱਖ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਦੀ ਇਸ ਨੀਤੀ ਪਿੱਛੇ ਇਹ ਗੱਲ ਲੁੱਕਵੇਂ ਰੂਪ ਪਈ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਆਪਣੀ ਇੱਕ ਖਪਤਵਾਦੀ ਮੰਡੀ ਤਿਆਰ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਸੈਕਸ ਅਤੇ ਸੁਪਨਿਆਂ ਨੂੰ ਵੇਚਿਆ ਜਾ ਸਕੇ। ਇਸ ਵਿਚ ਕੋਈ ਸ਼ੱਕ ਨਹੀਂ ਕਿ ਔਰਤ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀ ਮੁਖਧਾਰਾ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਬਿੰਦੂ ਬਣਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨੂੰ ਬਾਜ਼ਾਰ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਔਰਤ ਦੀ ਪਛਾਣ ਖਿੱਤਿਆਂ ਦੀ ਮੁਹਤਾਜ ਨਹੀਂ ਰਹੀ ਸਗੋਂ ਉਸ ਔਰਤ ਨੂੰ ਹੀ ਸੁੰਦਰ ਸਮਝਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜੀ ਮਹਿੰਗੀ ਕੰਪਨੀ ਦੇ ਸਾਬਣ, ਲਿਪਸਟਿਕ, ਬੌਡੀ ਲੋਸ਼ਨ ਆਦਿ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਹੈਰਾਨੀਜਨਕ ਪਹਿਲੂ ਇਹ ਵੀ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਵਿਸ਼ਵ ਸੁੰਦਰੀ ਉਸ ਨੂੰ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਇਨ੍ਹਾਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਸ਼ਾਇਦ ਇਸ ਕਰਕੇ ਹੀ ਬੌਲੀਵੁਡ ਦੇ ਅਭਿਨੇਤਾ/ਅਭਿਨੇਤਰੀ ਨੂੰ ਆਈਕਨ ਬਣਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਕਿ ਨੌਜਵਾਨ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀਆਂ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦਾ ਮਾਲ ਖ਼ਰੀਦਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੋ ਸਕਣ। ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਇਹ ਸਾਰਾ ਜਾਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਬੁਣਦਾ ਹੈ।

ਮੁਨਾਫ਼ਾਖੋਰੀ ਦਾ ਇਹ ਦੌਰ ਟੀ.ਆਰ.ਪੀ. ਨੂੰ ਬਰਕਰਾਰ ਰੱਖਣ ਲਈ ਕੱਚੇ-ਪੱਕੇ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਲਿਹਾਜ਼ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ। ਇਹ ਕੱਚੇ-ਪੱਕੇ ਪੱਤਰਕਾਰ ਟੀ.ਆਰ.ਪੀ. ਵਧਾਉਣ ਲਈ ਜਾਂ ਕਿਸੀ ਨਿੱਜੀ ਰੰਜਿਸ਼ ਲਈ ਸਟਿੰਗ ਅਪਰੇਸ਼ਨ ਨੂੰ ਟੂਲ ਵਜੋਂ ਵੀ ਵਰਤਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਜਦ ਅਸੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਉਹ ਵੀ ਰਾਜ-ਦਰਬਾਰ ਦੇ ਗੁਣ ਗਾਉਣ ਕਰਨ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਕੁਝ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ। ਹੁਣ ਤਾਂ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਖਿੱਤਿਆਂ ਨਾਲ ਸਬੰਧਿਤ ਪਾਰਟੀਆਂ ਦੇ ਆਪੋ-ਆਪਣੇ ਚੈਨਲ ਹੋ ਗਏ ਹਨ। ਜੇਕਰ ਕਿਸੇ ਵਜ੍ਹਾ ਕਾਰਨ ਕੋਈ ਚੈਨਲ ਬਲੈਕਆਊਟ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਨੂੰ ਡੀ.ਟੀ.ਐਚ. ਸਰਵਸ ਉੱਤੇ ਜਾਣ ਲਈ ਮਜਬੂਰ ਹੋਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੀ ਲਾਗਤ ਖੇਤਰੀ ਚੈਨਲਾਂ ਨੂੰ ਚੁਕਾਉਣੀ ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜੇਕਰ ਉਹ ਇਹ ਅਦਾਇਗੀ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਆਪਣੇ ਖ਼ਰਚੇ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਦੇ ਹੋਏ ਕੰਟੈਂਟ ਨਾਲ ਸਮਝੌਤਾ ਕਰ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਉਸਾਰੇ ਗਏ ਕੰਟੈਂਟ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਘਟੀਆ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸੰਗੀਤ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਕੁਝ ਵੀ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ ਕਿਉਂਕਿ ਘਟੀਆ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸੰਗੀਤ ਨਾਲ ਹੀ ਤੁਸੀਂ ਦਰਸ਼ਕ/ਸਰੋਤਿਆਂ ਨੂੰ ਕੀਲ ਕੇ ਬਿਠਾ ਸਕਦੇ ਹੋ। ਸਵਾਲ ਇਹ ਵੀ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਪੰਜਾਬੀ ਦਰਸ਼ਕ/ਸਰੋਤੇ ਦਾ ਬੌਧਿਕ ਪੱਧਰ ਐਨਾ ਗਿਰ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਚੰਗੇ-ਮਾੜੇ ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਪਰਖ ਕਰਨੀ ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਹੋ ਗਈ ਹੈ? ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੀਡੀਆ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਸੰਗੀਤ ਅਤੇ ਲੋਕ ਗਾਇਕੀ ਨੂੰ ਅੱਖੋਂ-ਪਰੋਖੇ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਪੰਜਾਬੀ

ਕੌਮ ਨੂੰ ਘਟੀਆ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸੰਗੀਤ ਉਪਰ ਨੱਚਣ ਜਾਂ ਲੱਚਰ ਕਿਸਮ ਦੇ ਚੁਟਕਲੇ ਸੁਣਨ ਤੱਕ ਮਹਿਦੂਦ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਡਾ. ਸਾਹਿਬ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ **"ਸਾਡੇ ਚੈਨਲਾਂ ਵਾਸਤੇ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੈ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਮਨੋਰੰਜਨ ਅਤੇ ਖ਼ਬਰਾਂ ਨੂੰ ਵਖ-ਵਖ ਕਰਨ। ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਅਸ਼ਲੀਲ ਮਨੋਰੰਜਨ ਨੂੰ ਜੋ ਕਿ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਦੇ ਪਰਦੇ ਹੇਠ ਪਰੋਸਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।"**[3] ਡਾ. ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਇਸ਼ਾਰਾ ਇਸ ਗੱਲ ਵੱਲ ਵੀ ਹੈ ਕਿ ਅਜੋਕਾ ਮੀਡੀਆ ਸੁਪਨੇ ਅਤੇ ਸੈਕਸ ਨੂੰ ਮੰਡੀ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਬਣਾਉਣ ਤੋਂ ਗੁਰੇਜ਼ ਕਰੇ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੀਡੀਆ ਲੋਕਤੰਤਰ ਦੇ ਥੰਮ ਵਜੋਂ ਆਪਣੀ ਨੈਤਿਕ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਨਿਭਾਵੇ।

21ਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੀ ਸਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ hyper ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਵਿਚੋਂ ਗੁਜ਼ਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸਾਡੇ ਜੀਵਨ ਵਿਹਾਰ ਉੱਤੇ ਬਾਹਰੋਂ ਤਿੱਖੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਲਾਗੂ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚ ਸੰਚਾਰ ਸਾਧਨ ਆਪੋ-ਆਪਣੇ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਅ ਰਹੇ ਹਨ। ਦਰਅਸਲ ਸੰਚਾਰ ਸਾਧਨਾਂ ਪਿੱਛੇ ਆਰਥਿਕ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਕੰਮ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸੂਚਨਾ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਇੱਕ ਮਹਾਂ-ਸ਼ਕਤੀ ਬਣ ਕੇ ਉੱਭਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨੂੰ ਰੋਕਣਾ ਮੁਸ਼ਕਿਲ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸਮੁੱਚੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਨਵ-ਬਸਤੀਵਾਦ ਤਾਕਤਾਂ ਉਦਯੋਗਿਕ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਨਾਂ ਹੇਠ ਤੀਜੀ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਅਧੀਨ ਕਰਕੇ ਆਪਣੀ ਮੰਡੀ ਦਾ ਅੰਗ ਬਣਾਉਣਾ ਲੋਚਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਹ ਸਭ ਕੁਝ ਸਾਮਰਾਜੀ ਤਾਕਤਾਂ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਆਸਰਾ ਲੈ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਮੀਡੀਆ ਜੋ ਭੌਤਿਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦਾ ਭਰਮ ਸਿਰਜ ਕੇ ਲੋਕ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਬੇਸ਼ੱਕ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਭਾਸ਼ਾ ਆਪਣੇ ਖੇਤਰੀ ਹੱਦ-ਬੰਨ੍ਹਿਆ ਨੂੰ ਤੋੜਦੇ ਹਨ ਪਰ ਜੇਕਰ ਦੂਸਰੇ ਪੱਖ ਤੋਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਪ੍ਰਤੀ ਹੀਣਤਾ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਥਾਂ-ਥਾਂ 'ਤੇ ਮੈਕ-ਡੋਨਲਡ, ਡੋਮੀਨਜ਼ ਅਤੇ ਹੋਰ ਅੰਤਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਚਾਇਨੀਜ਼ ਖਾਣਿਆਂ ਦੇ ਕੰਪਲੈਕਸਾਂ ਦਾ ਖੁਲ੍ਹ ਜਾਣਾ ਸਿੱਧੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਢਾਅ ਲਾਉਣ ਵਾਲੀ ਗੱਲ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੀ ਇੱਕ ਮਿਸਾਲ ਡਾ. ਸਾਹਿਬ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ **"ਅਸੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਘਰ ਵਿਚ ਆਲੂ ਖਾਣ ਤੋਂ ਨੱਸਦੇ ਹਾਂ, ਪਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਹੀ ਆਲੂਆਂ ਦੇ ਬਣੇ ਚਿਪਸ ਤੇ ਹੋਰ ਉਤਪਾਦ ਸੁਆਦ ਲੈ ਕੇ ਖਾਂਦੇ ਹਾਂ।"**[4] ਇਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਕੇਵਲ ਭਾਸ਼ਾ ਉੱਤੇ ਹਮਲਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਸਾਡੇ ਪੰਜਾਬੀ ਤਿਉਹਾਰਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਬਾਜ਼ਾਰਵਾਦ ਨੇ ਨਿਗਲ ਲਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਇੱਕ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਇੱਕ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸਥਾਪਤ ਕਰਨ ਦਾ ਪੁਰਜ਼ੋਰ ਯਤਨ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸਵਾਲ ਇਹ ਵੀ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਸਾਮਰਾਜੀ ਤਾਕਤਾਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦਾ ਭਰਮ ਸਿਰਜ ਕੇ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਗਲੋਬਲੀ ਪਿੰਡ ਸਿਰਜਣ ਵਿਚ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋ ਸਕਣਗੀਆਂ? ਭਿੰਨ-ਭਿੰਨ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਵਾਲੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਇਕੋ ਰੱਸੇ ਵਿਚ ਬੰਨਣਾ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਹਿਤੈਸ਼ੀਆਂ ਦੀ ਮੂਰਖਤਾ ਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਵੱਧ ਕੁਝ ਵੀ ਨਹੀਂ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ।

ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਨਕਾਰਾਤਮਕ ਪੱਖ ਹੀ ਨਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਸਗੋਂ ਸਕਾਰਾਤਮਕ ਪੱਖਾਂ ਦੀ ਪੜਚੋਲ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ **"ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਤੋਂ ਸਕਾਰਾਤਮਕ ਸੇਧ ਲੈਣ ਵਾਲੇ ਲੋਕ ਸਮਝਦੇ ਹਨ ਕਿ ਇੰਟਰਨੈਟ ਅਤੇ ਨਵ-ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਬਹੁ-ਕੌਮੀ ਸਟੇਟਸ ਹਾਸਿਲ ਕਰ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਉਦਾਹਰਣ ਵਜੋਂ ਕਨੈਡਾ ਦਾ ਬ੍ਰਿਟਿਸ਼ ਕੋਲੰਬੀਆ, ਸਿੰਘਾਪੁਰ, ਇੰਗਲੈਂਡ ਅਤੇ ਆਸਟ੍ਰੇਲੀਆ ਦੇ ਕੁਝ ਹਿੱਸਿਆ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਨੂੰ ਸਰਕਾਰੀ ਤੌਰ ਤੇ ਮਾਨਤਾ ਮਿਲਣ ਦੀਆਂ ਮਿਸਾਲਾਂ ਸਾਡੇ ਕੋਲ ਹਨ"**[5] ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਜਿੱਥੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਨਿਗਰ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉੱਥੇ ਨਵੀਂ ਕਲਾਤਮਕਤਾ ਨੂੰ ਵੀ ਨਿਖਾਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਅਸੀਂ ਆਪਣੀ ਸੂਚਨਾ ਹਰ ਦੇਸ਼ ਦੇ ਕੋਨੇ ਵਿਚ ਪਹੁੰਚਾ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਜਿੱਥੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰ, ਪੱਤਰਕਾਰ ਅਤੇ ਲੇਖਕ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਉੱਥੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ, ਹਿੰਦੀ ਅਤੇ ਉਰਦੂ ਦਾ ਮਿਲਗੋਭਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਚਾਰਨ ਸਮੱਸਿਆ ਵੀ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਪੱਖ ਤੋਂ ਮੀਡੀਆ ਵਰ ਹੈ ਜਾਂ ਸਰਾਪ ਇਸ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀ ਕਰਨੀ ਨਾ-ਮੁਮਕਿਨ ਹੈ ਪਰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਉਹ ਕਰ ਦਿਖਾਉਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਨਾ ਕੋਈ ਟੀ.ਵੀ. ਚੈਨਲ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਕੋਈ ਅਖ਼ਬਾਰ ਜਿਵੇਂ ਕੇ ਆਸਿਫ਼ਾ ਬਾਰੇ ਸਾਨੂੰ ਸਾਰੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਸਿਰਫ ਸੋਸ਼ਲ ਸਾਈਟਸ ਤੋਂ ਮਿਲੀ ਹੈ। ਇਹ ਜਾਣਕਾਰੀ ਸਾਡੇ ਲਈ ਵਰਦਾਨ ਸਾਬਿਤ ਹੋਈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਭਾਗੀਦਾਰੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਜਿੱਥੇ ਇੱਕ ਦੇਸ਼ ਆਪਣੀਆਂ ਖੇਤਰੀ ਸੀਮਾਵਾਂ ਨੂੰ ਤੋੜ ਕੇ ਪਾਰ-ਰਾਸ਼ਟਰੀਅਤ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਸਿਰਜਦਾ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਇਸ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਿੱਖਿਆ, ਰਸਮ-ਰਿਵਾਜ, ਤਿਉਹਾਰ, ਗੀਤ-ਸੰਗੀਤ, ਔਰਤ ਅਤੇ ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਦਾ ਵਪਾਰੀਕਰਨ ਕਰਕੇ ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਵੱਡੇ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਢਾਅ ਲਾਈ ਹੈ। ਜਿਸ ਪਿੱਛੇ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦੀ ਤਾਕਤਾਂ ਦਾ ਹੱਥ ਹੈ ਜੋ ਤੀਜੀ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਉੱਤੇ ਕਬਜ਼ਾ ਕਰਕੇ ਆਪਣੀ ਧੌਂਸ ਜਮ੍ਹਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।

ਅੰਤ ਵਿਚ ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਰਚਿਤ ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਪੁਸਤਕ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਪੁਸਤਕ ਹੈ ਜਿਹੜੀ ਮੀਡੀਆ+ਸਭਿਆਚਾਰ+ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ ਦਾ ਉਹ

ਤਿਕੋਣਾ ਸੁਮੇਲ ਸਿਰਜਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਸਮਕਾਲ ਦੇ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਦਾ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਕੀਤਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਜ਼ਰੀਏ ਤੋਂ ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਪੱਤਰਕਾਰਾਂ ਦੀ ਨਿੱਘਰ ਰਹੀ ਦੁਰਦਸ਼ਾ, ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਾਂ ਦੁਆਰਾ ਸੁਪਨੇ ਅਤੇ ਸੈਕਸ ਨੂੰ ਬਾਜ਼ਾਰੂ ਬਣਾ ਕੇ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਕੁਰਾਹੇ ਪਾਉਣਾ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਵੇਚਣ ਵਾਲੀ ਵਸਤ ਬਣਾ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਨਾ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਤਹਿਸ-ਨਹਿਸ ਕਰਨਾ, ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਸੰਗੀਤ/ਲੋਕ ਸੰਗੀਤ ਨੂੰ ਅੱਖੋਂ-ਪਰੋਖੇ ਕਰਕੇ ਲੱਚਰ ਕਿਸਮ ਦੀ ਗੀਤਕਾਰੀ ਅਤੇ ਗਾਇਕੀ ਨੂੰ ਪਰੋਸਣਾ, ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਦੇ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਦਾ ਖੋਖਲਾਪਣ ਅਤੇ ਵੱਧ ਰਹੇ ਬਜਟ ਆਦਿ ਸਮਕਾਲੀ ਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਲਾਹੇਵੰਦ ਸਿੱਧ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਦੀ ਕਲਾਤਮਕਤਾ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਦਾ ਇਹ ਵਡੱਪਣ ਵੀ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚਲੀ ਸੰਜਮਤਾ, ਸੰਚਾਰ ਜੁਗਤਾਂ ਅਤੇ ਸ਼ੈਲੀ ਆਮ ਪਾਠਕ ਨੂੰ ਆਕਰਸ਼ਿਤ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਸਗੋਂ ਕੀਲਣ ਦੀ ਯੋਗਤਾ ਵੀ ਰੱਖਦੀ ਹੈ ਪਰ ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਮੀਡੀਆ ਕੇਂਦਰਿਤ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦਾ ਦੁਹਰਾਮੂਲਕ ਰੁਝਾਨ ਪਾਠਕ ਨੂੰ ਉਕਤਾਉਂਦਾ ਵੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਕੁੱਲ ਮਿਲਾ ਕੇ ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਹਰ ਨੁਕਤੇ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਅਹਿਮ ਅਤੇ ਸਾਰਥਕ ਹੈ।

## ਹਵਾਲੇ


1. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ (ਡਾ.), ਮੀਡੀਆ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਆਰਸੀ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼, 2013, ਪੰਨਾ. 15
2. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 17
3. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 25
4. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 31
5. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 29

# ਮੀਡੀਆ: ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ

ਸਿਮਰਨ ਸੇਠੀ

ਤਬਦੀਲੀ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਅੱਟਲ ਨਿਯਮ ਹੈ।ਸਮੇਂ ਦੇ ਅਨੁਕੂਲ ਵਾਪਰ ਰਹੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਮੁਤਾਬਿਕ ਜਿੱਥੇ ਮਨੁੱਖ ਜਾਤੀ ਵਲੋਂ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਢਾਲਣਾ ਬੇਹੱਦ ਅਹਿਮ ਹੈ ਉੱਥੇ ਹੀ ਜ਼ਰੂਰੀ/ਹਾਂ-ਪੱਖੀ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨੂੰ ਅਪਣ-ਾਉਣਾ ਅਤੇ ਗ਼ੈਰ-ਜਰੂਰੀ/ਨਾਂਹ-ਪੱਖੀ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨੂੰ ਨਕਾਰਨਾ ਮਿਹਨਤੀ ਅਤੇ ਨਿਵੇਕਲੀ ਸੋਚ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ ਸਮਾਜਾਂ ਦੀ ਪਛਾਣ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀ ਜੰਗਲੀ ਅਵਸਥਾ ਤੋਂ ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕ ਅਵਸਥਾ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਣ ਵਿਚ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਸਮਾਜਾਂ ਨੂੰ ਨਵੀਂ ਦਿਸ਼ਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਕੇ ਜਿਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸੁਚਾਰੂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ, ਬਿਲਕੁਲ ਉਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਇਕ ਪਾਸੇ ਮਨੁੱਖੀ ਸੰਚਾਰ ਦੀ ਸਹਿਜ ਰੂਪ ਵਿਚ ਚਲ ਰਹੀ ਗਤੀ ਅੰਦਰ ਤੇਜ਼ੀ ਲਿਆਉਣ ਦਾ ਕੰਮ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਨਾਲ ਹੀ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ-ਜਾਚ ਨੂੰ ਕਾਬੂ ਕਰਨ, ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਬਦਲਣ ਅਤੇ ਮਨਚਾਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਵੱਲ ਮੋੜਨ ਵਿਚ ਵੀ ਮੁੱਖ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ ਹੈ। ਇਤਿਹਾਸਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵੇਖਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਜਗੀਰੂ ਤਾਕਤਾਂ ਦੇ ਖ਼ਿਲਾਫ਼ ਆਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨ ਵਜੋਂ ਮੀਡੀਆ ਹੋਂਦ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦਾ ਹੈ।**ਡਾ. ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ** ਅਨੁਸਾਰ,

> "ਯੂਰਪ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਇਕ ਜਗੀਰਦਾਰੀ ਸਮਾਜ ਤੋਂ ਆਧੁਨਿਕ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਰੂਪਾਂਤਰਣ ਲਈ ਮੁੱਖ ਰੋਲ ਨਿਭਾਇਆ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਸਾਰੇ ਜਾਣਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਬਰਤਾਨੀਆ, ਅਮਰੀਕਾ ਅਤੇ ਫਰਾਂਸ ਵਿਚ ਹੋਏ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਪ੍ਰੀਵਰਤਨ ਵਿਚ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਸੀ ਅਤੇ ਉਸ ਵੇਲੇ ਦੇ ਮਹਾਨ ਲੇਖਕਾਂ/ਚਿੰਤਕਾਂ ਜਿਵੇਂ ਰੂਸੋ, ਵੋਲਟੇਅਰ, ਜਾਨ ਵਿਲਕਸ ਨੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਜਗੀਰਦਾਰੀ ਤਾਕਤਾਂ ਵਿਰੁੱਧ ਜੇਹਾਦ ਨੂੰ ਤਿੱਖਾ ਕਰਨ ਲਈ ਇਸਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕੀਤੀ ਸੀ।"[1]

ਸਮੇਂ ਦੀ ਰਫਤਾਰ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਸੂਚਨਾ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਦੇ ਵੀ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਬਣਨ ਕਾਰਨ ਮੀਡੀਆ ਮਨੁੱਖੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰਿਤ ਕਰਕੇ ਹਰ ਸਮਾਜ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਤੇਜ਼ ਗਤੀ ਨਾਲ ਬਦਲਣ ਵੱਲ ਰੁਚਿਤ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦੀ ਤਾਕਤਾਂ, ਆਪਣੇ ਹਿੱਤਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਹਿੱਤ ਉੱਨਤਸ਼ੀਲ ਦੇਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀਆਂ ਬਸਤੀਆਂ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਤਰਲੋ-ਮੱਛੀ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਪ੍ਰਿੰਟ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਇਲੈਕਟ੍ਰੋਨਿਕ ਮੀਡੀਆ ਹੁਣ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਜਗਤ ਦੇ ਹੱਥਾਂ ਵਿਚ ਚਲਾ ਗਿਆ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਨੈਤਿਕਤਾ ਦੇ ਮਾਪਦੰਡਾਂ ਤੋਂ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਮੁਕਤ ਕਰਕੇ ਪੂਰੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਦੇ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਹੁਣ ਸਾਰੇ ਹੱਦਾਂ ਬੰਨੇ ਟੱਪਦਾ ਹੋਇਆ ਇਲੈਕਟ੍ਰੋਨਿਕ ਮੀਡੀਆ ਇਸ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਦੇ ਕਹੇ ਮੁਤਾਬਿਕ ਹਰ ਸ਼ੈਅ ਨੂੰ ਵਸਤੂ ਬਣਾ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਵੱਲ ਰੁਚਿਤ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਕਿਸ ਸਮਾਜ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਕਿਸ ਤਰੀਕੇ ਲੋਕਾਂ ਤਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣਾ ਹੈ, ਇਸਦਾ ਫ਼ੈਸਲਾ ਹੁਣ ਵਪਾਰਕ ਘਰਾਣਿਆਂ ਦੇ ਹੱਥਾਂ ਵਿਚ ਹੈ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਇਕੋ ਇਕ ਮਕਸਦ ਅੰਨ੍ਹੇ ਵਾਹ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣਾ ਹੈ। ਲੋਕ ਸੇਵਾ ਜਾਂ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਾਸਤੇ ਕੋਈ ਮਾਇਨੇ ਨਹੀਂ ਰੱਖਦੀਆਂ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਅੰਦਰ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਸੰਬੰਧੀ **ਫਰੈਂਕਫਰਟ ਸਕੂਲ** ਆਖਦਾ ਹੈ:-

> "ਮੀਡੀਆ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਤੰਤਰ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਪਤਿਆਉਂਦਾ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਵਿਚ ਇਕ ਅਜਿਹੇ ਸਮੂਹ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਮੂਹਿਕ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਕਾਬੂ ਅਤੇ ਸੇਧਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਜਿਸਦਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਧਾਰਨ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੀ ਯਥਾਰਥਕਤਾ ਤੋਂ ਪਾਸੇ ਲੈ ਜਾਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।"[2]

ਰੇਡੀਓ, ਟੈਲੀਵੀਜ਼ਨ, ਫ਼ਿਲਮਾਂ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਮੋਬਾਇਲ ਫ਼ੋਨ, ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਅਜੋਕਾ ਮਨੁੱਖ ਬੁਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਫਸ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੇ ਫ਼ਲਸਰੂਪ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਅਣਗਿਣਤ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਛਿੱਕੇ ਟੰਗ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਇਸ ਕਦਰ ਸਾਡੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਉੱਤੇ ਹਾਵੀ ਹੋ ਚੁੱਕਾ ਹੈ ਕਿ ਸਵੇਰੇ ਉੱਠਣ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਰਾਤੀ ਸੌਣ ਤਕ ਸਾਡੇ ਖਾਣ-ਪੀਣ, ਸਾਡੇ ਪਹਿਨਣ, ਸਾਡੇ ਵਰਤੋਂ ਵਿਹਾਰ, ਇੱਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਸਾਡੀ ਸੋਚ ਵੀ ਮੀਡੀਆ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਵਪਾਰਕ ਹਿੱਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਹੋ ਚੁੱਕਾ ਮੀਡੀਆ ਮਨੁੱਖੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਵਸਤੂ ਬਣਾ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਤੋਂ ਗੁਰੇਜ਼ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਪਹਿਲਾਂ ਵੀ ਕਿਹਾ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਤਬਦੀਲੀ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਅਟੱਲ

ਨਿਯਮ ਹੈ ਅਤੇ ਜਦੋਂ ਗੱਲ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਅਨੇਕਾਂ ਧਾੜਵੀਆਂ, ਹਮਲਾਵਰਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਕਬੂਲਨ ਸਮੇਂ ਵੀ ਇਸ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਸੀਮਿਤ ਪੱਧਰ ਤਕ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਨਹੀਂ ਹੋਈਆਂ ਜਿੰਨੀਆਂ ਕਿ ਇਸ **'ਗਲੋਬਲ ਪਿੰਡ'** ਦਾ ਨਾਅਰਾ ਲਾਉਣ ਵਾਲੇ ਖਪਤਕਾਰੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਹਨ।

ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦੀ ਫ਼ਿਤਰਤ ਨਾਲ ਜਾਣ-ਪਛਾਣ ਕਰਾਉਂਦੇ ਹੋਏ ਡਾ. **ਹ.ਕ. ਮਨਮੋਹਨ ਸਿੰਘ** ਆਖਦੇ ਹਨ:-

> "ਖੇਤਾਂ ਵਿਚ ਖ਼ੂਨ ਪਸੀਨਾ ਇਕ ਕਰਦਾ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ, ਅਖਾੜਿਆਂ ਵਿਚ ਡੰਡ ਪੇਲਦਾ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਪਹਿਲਵਾਨ, ਜੰਗਾਂ ਯੁੱਧਾਂ ਵਿਚ ਜੂਝਦਾ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਜਵਾਨ, ਤ੍ਰਿੰਝਣਾਂ ਵਿਚ ਚਰਖਿਆਂ ਦੀ ਗੂੰਜ, ਗਿੱਧੇ ਦੀ ਘੂੰਕਾਰ ਤੇ ਭੰਗੜੇ ਦੀ ਲਲਕਾਰ, ਵੱਡਿਆਂ ਦਾ ਆਦਰ, ਛੋਟਿਆਂ ਲਈ ਸਨੇਹ, ਪਰਿਵਾਰਕ ਗੰਢਾਂ, ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀ ਸਾਂਝ, ਗਲੀ ਮੁਹੱਲੇ ਦੀ ਅਪੱਣਤ, ਜਾਤ ਪਾਤ, ਮਜ਼ਹਬ, ਫ਼ਿਰਕੇ ਦੇ ਵਖਰੇਵਿਆਂ ਦੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਗਲਵਕੜੀਆਂ ਪਾ ਕੇ ਮਿਲਣਾ, ਪਿਆਰ ਨਾਲ ਰਹਿਣਾ, ਪਰਿਵਾਰ ਵਾਂਗ ਵਸਣਾ ਅਤੇ ਸਭ ਕੁਝ ਤੋਂ ਉੱਤੇ ਹੈ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਅਣਖ, ਪੰਜਾਬੀ ਹੋਣ ਦਾ ਮਾਣ।"[3]

ਇਸ ਬਿਰਤੀ ਦਾ ਮਾਲਕ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦਾ, ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਆਪਣੇ ਵਿਵਹਾਰ ਅਤੇ ਜੀਵਨ-ਮੁੱਲਾਂ ਤੋਂ ਟੁੱਟਦਾ ਹੋਇਆ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਉਹ ਪੜ੍ਹ-ਲਿਖ ਕੇ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਵਲ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਸ਼ਹਿਰੀ ਜਮਾਤ ਦੇ ਤੌਰ ਤਰੀਕਿਆਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਂਦਾ ਹੋਇਆ, ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰੇ, ਸਾਂਝ ਤੋਂ ਦੂਰ ਹੁੰਦਾ ਹੋਇਆ ਨਿੱਜਵਾਦ, ਵਿਹਲੜਪੁਣੇ ਅਤੇ ਸ਼ਹਿਰੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੰਦਰ ਫਸ ਕੇ ਰਹਿ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਉਸਦਾ ਆਪਣੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਨਾਤਾ ਟੁੱਟਦਾ ਹੈ। ਵਿਖਾਵੇ ਦੀ ਦੌੜ ਵਿਚ ਫਸਿਆ ਹੋਇਆ ਪੰਜਾਬੀ ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ ਮਾਧਿਅਮ ਦੁਆਰਾ ਵੱਡੇ ਸੁਪਨੇ ਵੇਖਣ ਵਾਲਾ, ਕੋਠੀਆਂ ਵਿਚ ਰਹਿਣ ਵਾਲਾ, ਮੌਜ ਮਸਤੀ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਪੰਜਾਬੀ ਬਣਦਾ ਹੈ ਜੋ ਮਿਹਨਤ ਕਰਨ ਤੋਂ ਗੁਰੇਜ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮੀ-ਡੀਆ ਅਜਿਹੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨੂੰ ਕੋਈ ਸਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਨਾ ਦਿਖਾਉਂਦਾ ਹੋਇਆ, ਕੁਰਾਹੇ ਤੋਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਜਿਸ ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਦਾ ਬਿੰਬ, ਮੀਡੀਆ ਉਸਾਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ ਘਰੋਂ ਕਾਲਜ ਪੜ੍ਹਾਈ ਕਰਨ ਨਹੀਂ ਜਾਂਦਾ ਸਗੋਂ ਮਾਪਿਆਂ ਲਈ ਨੂੰਹ ਪਸੰਦ ਕਰਨ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਉਹ ਹਥਿਆਰ ਰੱਖਣ ਵਾਲਾ, ਛੋਟੀ-ਛੋਟੀ ਗੱਲ ਤੇ ਗੋਲੀਆਂ ਚਲਾਉਣ ਵਾਲਾ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਟੋਟਾ, ਮਾਲ ਕਹਿਣ ਵਾਲਾ, ਮਾਪਿਆਂ ਦੀ ਇੱਜ਼ਤ ਨਾ ਕਰਨ ਵਾਲਾ, ਕੰਮ ਤੋਂ ਜੀਅ ਚੁਰਾਉਣ ਵਾਲਾ, ਪੱਛਮੀ ਸਟਾਈਲ ਦੀ ਦਾੜ੍ਹੀ ਕਟਵਾ ਕੇ, ਵਾਲਾਂ ਉੱਤੇ ਜੈਲ ਲਾ ਕੇ, ਬੁਲਟ ਉੱਤੇ ਕਾਲਜ ਦੀਆਂ ਗੇੜੀਆਂ ਮਾਰਨ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਇਹ ਸਭ ਮੀਡੀਆ ਵਲੋਂ ਜਾਣ ਬੁੱਝ ਕੇ ਕਰਵਾਇਆ ਜਾਣਾ ਜਿੱਥੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਇਕ, ਬਹਾਦਰ ਸੂਰਮੇ ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਵਾਲੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉੱਥੇ ਹੀ ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਅੰਦਰ ਦਿਖਾਵੇ ਦੀ ਬਿਰਤੀ ਨੂੰ ਵੀ ਹੱਲਾਸ਼ੇਰੀ ਦੇ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਾਰਣ ਉਹ ਆਪਣੀ ਯਥਾਰਥੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੰਦਰ ਇਹੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਕਬੂਲਣ ਲਈ ਤਤਪਰ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਅਜਿਹਾ ਬਿੰਬ ਉਘਾੜਨ ਵਿਚ ਸਾਡੇ ਗਾਇਕਾਂ, ਫ਼ਿਲਮ ਅਦਾਕਾਰਾਂ ਦਾ ਵੀ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਹੱਥ ਹੈ। ਪੈਸੇ ਦੇ ਲਾਲਚ ਅਤੇ ਰਾਤੋ-ਰਾਤ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹੋਣ ਦੀ ਤਾਂਘ ਅਧੀਨ ਜਿੱਥੇ ਵਿਰਾਸਤੀ ਗਾਇਕੀ ਨੂੰ ਢਾਹ ਲਾਈ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ ਉੱਥੇ ਆਪਣੀ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਗੁਮਰਾਹ ਕਰਨ ਵਿਚ ਵੀ ਕੋਈ ਕਸਰ ਬਾਕੀ ਨਹੀਂ ਛੱਡੀ ਜਾ ਰਹੀ। ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ ਉੱਪਰ ਦੂਰਦਰਸ਼ਨ ਕੇਂਦਰ ਵਲੋਂ ਸੁਰਿੰਦਰ ਕੌਰ, ਨਰਿੰਦਰ ਬੀਬਾ, ਆਸਾ ਸਿੰਘ ਮਸਤਾਨਾ, ਗੁਰਦਾਸ ਮਾਨ, ਹਰਭਜਨ ਮਾਨ ਵਰਗੇ ਗਾਇਕਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਜਿੱਥੇ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਲੋਕ-ਵਿਰਸੇ ਨਾਲ ਜੋੜਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ ਉੱਥੇ ਅੱਜ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਧਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਨੌਸਿੱਖੀਏ ਗਾਇਕਾਂ ਅਤੇ ਨਿਰਮਾਤਾ-ਨਿਰਦੇਸ਼ਕਾਂ ਵਲੋਂ ਜਿਸ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ ਉਸਨੂੰ ਸੁਣ ਕੇ ਕਿਸੇ ਦਾ ਵੀ ਸਿਰ ਸ਼ਰਮ ਨਾਲ ਝੁਕ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਗੀਤਾਂ ਅੰਦਰ ਨਸ਼ਾ, ਹਥਿਆਰ, ਜਾਤ-ਪਾਤ, ਧਮਕੀਆਂ, ਵਿਦੇਸ਼ੀ ਪਹਿਰਾਵੇ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਇਕ ਵਸਤੂ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ -ਕੀਮਤਾਂ ਅਤੇ ਨੈਤਿਕ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਛਿੱਕੇ ਟੰਗਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

## ਹਥਿਆਰਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਗੀਤ

ਮੂੰਹੋ ਬੋਲਦੇ ਨੀ ਮਾੜਾ, ਪੁੱਠਾ ਕਰਕੇ ਨੀ ਕਾਰਾ,
ਆਉਂਦੀ ਨਾ ਸਮਝ ਕਾਹਤੋਂ ਸੜਦੇ ਆ,
ਲ਼ਾ ਕੇ ਚਿੱਟਾ ਚਾਦਰਾ ਮੇਲੇ ਨੂੰ ਆਉਣ ਦਾ
ਯਾਰਾਂ ਨੂੰ ਏ ਸ਼ੌਂਕ ਬੱਕਰੇ ਬੁਲਾਉਣ ਦਾ
ਸ਼ੇਰਾਂ ਦੇ ਸ਼ਿਕਾਰ ਕਰਕੇ ਦਿਖਾਉਣ ਦਾ
ਮਿੱਤਰਾਂ ਨੂੰ ਸ਼ੌਂਕ ਗੋਲੀਆਂ ਚਲਾਉਣ ਦਾ [4] **(ਹਨੀ ਸਿੰਘ-ਦਿਲਜੀਤ)**
ਰਗਾਂ ਵਿਚ ਖ਼ੂਨ ਜਾ ਉਬਾਲੇ ਜਿਹਾ ਮਾਰੇ
ਲਗਦਾ ਐ ਕਰੂ ਵਾਰਦਾਤ ਕੋਈ ਦੁਬਾਰੇ

ਪੰਜ ਠੋਕਣੇ ਸੀ ਇਕ ਜਿਉਂਦਾ ਰਹਿ ਗਿਆ
ਗੱਲ ਜਾਂਦੀ ਨਹੀਓ ਜੱਟ ਕੋਲੋਂ ਜਰੀ
ਫੇਰ ਜਾਂਦਾ ਏ ਦੂਨਾਲੀ ਲੋਢ ਕਰੀ
ਅਜੇ ਕੱਲ੍ਹ ਹੀ ਹੋਇਆ ਸੀ ਜੱਟ ਬਰੀ [5] **(ਦਿਲਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋ)**

ਇਹੋ ਜਿਹੀਆਂ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀਆਂ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋ ਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਖ਼ਾਸ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬ ਅੰਦਰ ਗੈਂਗਵਾਰ ਦਾ ਦੌਰ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਅੰਦਰ ਨੌਜਵਾਨ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਵੀਡੀਓ ਵਿਚਲਾ ਉਹੀ ਹੀਰੋ ਮੰਨਦਾ ਹੋਇਆ ਅਸਲੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੰਦਰ ਜਿੱਥੇ ਲੁੱਟ-ਖੋਹ, ਜ਼ਮੀਨਾਂ ਉੱਪਰ ਨਾਜਾਇਜ਼ ਕਬਜ਼ਿਆਂ ਵਿਚ ਭਾਗੀਦਾਰ ਬਣਦਾ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਹੀ ਉਹ ਹੰਮਰ ਅਤੇ ਔਡੀ ਵਰਗੀਆਂ ਮਹਿੰਗੀਆਂ ਗੱਡੀਆਂ ਦੇ ਸੁਪਨੇ ਵੀ ਵੇਖਦਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨੂੰ ਅਜਿਹੀ ਸੁਪਨਮਈ ਦੁਨੀਆ ਵਿਚ ਲਿਜਾ ਕੇ ਖੜ੍ਹਾ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਉਹ ਹਥਿਆਰਾਂ ਦੇ ਜ਼ੋਰ ਉੱਤੇ ਐਸ਼ ਕਰਨ ਵਲ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਯਥਾਰਥ ਅੰਦਰ ਉਸਨੂੰ ਜਿੱਥੇ ਹਥਿਆਰ ਆਸਾਨੀ ਨਾਲ ਹਾਸਿਲ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਉੱਥੇ ਉਸਦੇ ਵੱਡੇ ਸੁਪਨੇ ਕੇਵਲ ਸੁਪਨੇ ਹੀ ਬਣ ਕੇ ਰਹਿ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਨਤੀਜਨ, ਉਹ ਸੰਘਰਸ਼ ਤੋਂ ਡਰਦਾ ਹੋਇਆ ਨਸ਼ਿਆਂ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਆਹਾਂ ਅੰਦਰ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਹਥਿਆਰਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਚਿੰਤਾਜਨਕ ਹੋ ਨਿਬੜਦੀ ਹੈ। ਪਿਛਲੇ ਕੁਝ ਸਾਲਾਂ ਦੌਰਾਨ ਵਿਆਹ ਸਮਾਗਮਾਂ ਵਿਚ ਗੋਲੀ ਚੱਲਣ ਨਾਲ ਹੋਣ ਵਾਲੀਆਂ ਮੌਤਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਵਿਚ ਹੈਰਾਨੀਜਨਕ ਵਾਧਾ ਹੋਇਆ ਹੈ।

## ਨਸ਼ਿਆਂ ਸੰਬੰਧੀ ਗੀਤ

ਇਕ ਦਿਲ ਨੂੰ ਕੋਈ ਕੁੜੀ ਫਬ ਜੇ
ਦੂਜਾ ਫੀਮ ਦਾ ਡਰੰਮ ਲੱਭ ਜੇ
ਸੱਚੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦਾ ਸਿਰਾ ਲੱਗ ਜੇ[6] **(ਸ਼ਰਨ ਮਾਨ)**

ਸਾਹਾਂ 'ਚ ਸਹਕਦੀ ਏ, ਦਿਲ 'ਚ ਧੜਕਦੀ ਏ
ਲੋਕੀ ਆਖਦੇ ਨੇ ਮੇਰੇ ਨਾਲ ਫਸੀ ਹੋਈ ਏ
ਨੀ ਤੂੰ ਜੱਟ ਦੇ ਬਲੱਡ ਵਿਚ ਸੋਹਣੀਏ
ਡਰੱਗ ਵਾਂਗੂ ਰਚੀ ਹੋਈ ਏ[7] **(ਹਰਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋਂ)**

ਤੇਰੀ ਯਾਦ ਜੇ ਸਤਾਉਗੀ ਤਾਂ ਕੀ ਕਰੂੰਗਾ
ਕਹਿੰਦੀ ਪੈਗ ਪੁੱਗ ਲਾ ਲਿਆ ਕਰੀਂ
ਯਾਦ ਆਉਣਗੇ ਜੇ ਸ਼ਿਮਲੇ ਦੇ ਟੂਰ ਬੱਲੀਏ
ਕਹਿੰਦੀ ਮਨ ਪਰਚਾ ਲਿਆ ਕਰੀਂ
ਚੇਤਾ ਗਿਆ ਨਾ ਦਿਮਾਗ 'ਚੋਂ ਜੇ ਤੇਰਾ
ਉੱਤੋਂ ਪੈਗ ਪੁੱਗ ਲੱਗਾ ਹੋਇਆ ਮੇਰਾ
ਤੇਰੇ ਸਹੁਰੇ ਘਰੇ ਗੇਟ ਮੂਹਰੇ ਮਾਰੂ ਬੜਕਾਂ
ਹਸਬੈਂਡ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਲਿਆ ਕਰੀਂ[8] **(ਦੀਪ ਕਰਨ)**

## ਜੱਟ ਸੰਬੰਧੀ ਗੀਤ

ਵਾਲਾਂ ਵਿਚ ਪਾਏ ਚੀਰ ਟੇਢੇ ਵਾਲੀਏ
ਗੱਲ ਸੁਣੀ ਖੜ੍ਹ ਕੇ ਕਨੇਡੇ ਵਾਲੀਏ
ਸਾਂਝੇ ਜੋ ਕਬੀਲਦਾਰੀ ਆਣ ਕੇ
ਨੀ ਏਹੋ ਜਿਹੀ ਨੀਡ ਮੋਮ ਨੂੰ
ਸ਼ਾਦੀ ਡੋਟ ਕੋਮ ਉੱਤੇ ਜਿੰਨੇ ਰਿਸ਼ਤੇ
ਨੀ ਸਾਰੇ ਜੱਟ ਕੌਮ ਨੂੰ [9] **(ਰਣਜੀਤ ਬਾਵਾ)**

ਕਿਵੇਂ ਤੋੜ ਦੂ ਕੋਈ ਤੇਰਾ ਮੇਰਾ ਪਿਆਰ ਨੀ
ਮੂਹਰੇ ਜੱਟ ਖਾੜਕੂ ਖੜਾ[10] **(ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ)**

ਤੇਰੇ ਬਾਪੂ ਨੇ ਨੀ ਠੇਡਾ ਮੇਰੇ ਮਾਰਨਾ
ਜਦੋਂ ਤੇਰਾ ਹੱਥ ਮੰਗਿਆ
ਜੱਟ ਜੱਟਾਂ ਆਲੀ ਕਰਕੇ ਵਿਖਾਉਗਾ

ਜੇ ਤੈਨੂੰ ਕਿਤੇ ਹੋਰ ਮੰਗਿਆ[11] **(ਨਿੰਜਾ)**

## ਧਮਕੀ ਭਰੇ ਗੀਤ

ਨੀ ਜੇ ਇਸ ਵਾਰ ਵੀ ਤੂੰ ਮੈਨੂੰ ਨਾਂਹ ਕਰਤੀ
ਨੀ ਮੈਂ ਕਰਜੂ ਸੁਸਾਇਡ ਤੇਰੇ ਸਾਹਮਣੇ[12] **(ਸੁੱਖੀ)**

ਦੇਖੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਤੂੰ ਚਿਹਰੇ
ਜਦੋਂ ਪੈ ਗਏ ਬਿੱਲੋ ਘੇਰੇ
ਗੋਲੀ ਚੱਲਣੀ ਆ ਕੱਲ੍ਹ ਤੇਰੇ ਨਾਂ ਤੇ[13] **(ਦਿਲਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋਂ)**

## ਅਠਾਰ੍ਹਵੇਂ ਸਾਲ ਵਿਚ ਪਹੁੰਚੇ ਨੌਜਵਾਨ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ

ਜੰਮਿਆ ਜਿੱਦਣ ਤੋਂ ਮਹੀਨੇ ਹੁੰਦੇ ਗਏ
ਯਾਰ ਹੋਰੀਂ ਥੋੜ੍ਹੇ ਜਿਹੇ ਕਮੀਨੇ ਹੁੰਦੇ ਗਏ
ਪਹਿਲੀ ਗਾਲ਼ ਚਾਚਾ ਜੀ ਨੇ ਕੱਢਣੀ ਸਿਖਾਈ
ਗਾਲ਼੍ਹਾਂ ਕੱਢਦਾ ਸੀ ਬਿੱਲਾ ਫਿਰ ਆਮ ਹੋ ਗਿਆ
ਸੋਲਵਾਂ ਵੀ ਟੱਪਿਆ, ਸਤਾਰਵਾਂ ਵੀਂ ਟੱਪਿਆ
ਅਠਾਰਵੇਂ 'ਚ ਮੁੰਡਾ ਬਦਨਾਮ ਹੋ ਗਿਆ[14] **(ਮਨਕੀਰਤ ਔਲਖ)**

ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨੂੰ ਖਾੜਕੂ ਜੱਟ, ਸ਼ਰਾਬ ਅਤੇ ਨਸ਼ਿਆਂ ਵਿਚ ਗਲਤਾਨ, ਧਮਕੀਆਂ ਦੇਣ ਵਾਲਾ ਅਤੇ 18ਵੇਂ ਸਾਲ ਦੀ ਉਮਰ ਵਿਚ ਬਦਨਾਮ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਵਜੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਗਾਇਕਾਂ, ਗੀਤਕਾਰਾਂ ਵਲੋਂ ਦੁਨੀਆਂ ਅੰਦਰ ਉਭਾਰ ਕੇ ਨੌ-ਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਸਰੀਰਕ, ਮਾਨਸਿਕ, ਭਾਵਾਤਮਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਨਿਗੁਣਾ ਅਤੇ ਕਮਜ਼ੋਰ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰਨ ਦੀ ਹਰ ਪੁਰਜ਼ੋਰ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਹੋ ਜਿਹੀ ਗਾਇਕੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਫੁੱਲਿਤ ਕਰਨ ਅਧੀਨ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਖ਼ਤਰਨਾਕ ਭੂਮਿਕਾ ਵਿਸ਼ਵੀ ਪੱਧਰ ਉੱਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਕੀ ਇਹੋ ਜਿਹੀ ਸਥਿਤੀ ਅੰਦਰ ਸਾਫ ਸੁਥਰੀ ਗਾਇਕੀ ਨੂੰ ਦੁਨੀਆਂ ਅੰਦਰ ਫੈਲਾਉਣ ਹਿੱਤ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਮਦਦ ਨਾਲ ਚੰਗੀ ਸੂਝ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ ਗੀਤਕਾਰ, ਗਾਇਕ ਸਾਰਥਕ ਹੰਭਲਾ ਮਾਰ ਕੇ ਆਪਣੀ ਬਹੁਮੁੱਲੀ ਲੋਕ-ਗਾਇਕੀ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨੂੰ ਬਚਾਅ ਨਹੀਂ ਸਕਦੇ? ਉਦਾਹਰਣ ਵਜੋਂ 18ਵੇਂ ਸਾਲ ਵਿਚ ਬਦਨਾਮ ਹੋਣ ਦੀ ਗੱਲ ਸੁਣ ਕੇ ਇਕ ਉਭਰਦਾ ਹੋਇਆ **ਸ਼ਾਇਰ ਜਸਵਿੰਦਰ ਚਾਹਲ** ,ਜੋ ਆਪਣੀ ਕਵਿਤਾ **'ਮਰਦਮਸ਼ੁਮਾਰੀ'** ਕਾਰਨ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਦਿਲਾਂ ਅੰਦਰ ਖ਼ਾਸ ਥਾਂ ਬਣਾ ਚੁੱਕਾ ਹੈ, ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ 18ਵਾਂ ਸਾਲ ਬਦਨਾਮ ਹੋਣ ਲਈ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਨਾਮ ਕਮਾਉਣ ਲਈ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਵੇਂ:-

ਅਠਾਰ੍ਹਵੇਂ 'ਚ ਤਾਂ ਯਾਦਗਾਰੀ ਰੋਲ ਨਿਭਾਣਾ ਸੀ
ਔਲਖ ਸਾਹਬ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦਾ ਪਾਤਰ ਬਣ ਜਾਣਾ ਸੀ
ਦੱਸੋ ਕਿਵੇਂ ਅਜਾਦੀਆਂ ਮਾਣਦਾ ਅਵਾਮ ਜੀ
ਜੇ ਅਠਾਰ੍ਹਵੇਂ 'ਚ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਵੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਬਦਨਾਮ ਜੀ
ਖ਼ਾਸ ਕੰਮ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਆਮ ਨਹੀਂਓ ਹੁੰਦੇ
ਸਿਆਣੇ ਧੀ-ਪੁੱਤ ਕਦੇ ਬਦਨਾਮ ਨਹੀਂਓ ਹੁੰਦੇ [15]

ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅੰਦਰ ਵਿਆਹ ਦੌਰਾਨ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਣ ਵਾਲੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਰਸਮਾਂ, ਲੋਕਗੀਤਾਂ ਅਤੇ ਲੋਕ ਨਾਚਾਂ ਉੱਪਰ ਵੀ ਬੇਹੱਦ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਿਆ ਹੈ। ਪਰੰਪਰਕ ਦੌਰ ਵਿਚ ਵਿਆਹ ਮੌਕੇ ਸੁਹਾਗ, ਘੋੜੀਆਂ, ਗਿੱਧਾ, ਭੰਗੜਾ ਵਰਗੇ ਦਿਲ ਨੂੰ ਛੋਹ ਲੈਣ ਵਾਲੇ ਲੋਕਗੀਤ ਅਤੇ ਲੋਕ ਨਾਚ ਨੱਚੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ ਪਰ ਹੁਣ ਜਦੋਂ ਹਰ ਸ਼ੈਅ ਖਪਤਕਾਰੀ ਮੰਡੀ ਦੀ ਵਸਤੂ ਬਣ ਚੁੱਕੀ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਥਾਂ ਵੀ ਪੇਸ਼ੇਵਰ ਕਲਾਕਾਰਾਂ ਨੇ ਮੱਲ ਲਈ ਹੈ। ਵਿਆਹਾਂ ਅੰਦਰ ਆਰਕੈਸਟਰਾ ਦੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਜਿਹੋ ਜਿਹੇ ਗਾਣਿਆ ਉੱਪਰ, ਅਸ਼ਲੀਲ ਹਰਕਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਡਾਂਸ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ, ਉਹ ਕਿਸੇ ਵੀ ਪੱਖ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕ-ਨਾਚਾਂ ਦੇ ਆਸ-ਪਾਸ ਵੀ ਨਹੀਂ ਢੁੱਕਦਾ। ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਮਾਹੌਲ ਅੰਦਰ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਅਜੋਕੀ ਗਾਇਕੀ ਦੇ ਮੁਰੀਦ ਆਪ ਵੀ ਡਾਂਸਰਾਂ ਨਾਲ ਮਿਲ ਕੇ ਨੱਚਣ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਲੱਖਾਂ ਰੁਪਏ ਖਰਚ ਕਰਕੇ ਕੀਤੇ ਗਏ ਵਿਆਹਾਂ ਅੰਦਰ ਪੂਰਾ ਫ਼ਿਲਮੀ ਨਜ਼ਾਰਾ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਸਹੁਰੇ ਕੋਲੋਂ ਘੁੰਡ ਕੱਢਣ ਵਾਲੀ ਪੰਜਾਬਣ ਵੀ ਅੱਜ ਇਕੋ ਫਲੋਰ 'ਤੇ ਪਤੀ, ਦਿਉਰ, ਜੇਠ, ਸਹੁਰੇ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਨੱਚਦੀ ਹੋਈ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਰੂਹ ਦੀ ਖੁਰਾਕ ਸਮਝੇ ਜਾਣ ਵਾਲੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਲੋਕ-ਰੂਪਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਜੜ੍ਹੋਂ ਹਿਲਾ ਕੇ ਰੱਖ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।

ਖ਼ਪਤਕਾਰੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਹਾਮੀ ਭਰਨ ਵਾਲਾ ਮੀਡੀਆ ਜਦੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦਾ ਹੈ

ਜਾਂ ਆਪਣੇ ਫ਼ਾਇਦੇ ਹਿੱਤ ਨਾਰੀ ਜਾਤੀ ਨੂੰ ਇਕ ਵਸਤੂ ਬਣਾ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਗਲੋਬਲ ਪਿੰਡ ਕਹੇ ਜਾਣ ਵਾਲੇ ਸੰਸਾਰ ਅੰਦਰ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਖ਼ੂਬਸੂਰਤੀ ਦੇ ਪੈਮਾਨੇ/ਮਾਪਦੰਡ ਬਦਲਦੇ ਹਨ। ਉਸਦੀ ਕੁਦਰਤੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨੂੰ ਅੱਖੋ-ਪਰੋਖੇ ਕਰਕੇ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਪੈਮਾਨਾ ਘੜਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਸਾਰੇ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਚ ਇਕ ਹੀ ਹੋਵੇ। ਜਿੱਥੇ ਪੰਜਾਬਣ ਦੀ ਖੂਬਸੂਰਤੀ ਦਾ ਪੈਮਾਨਾ 'ਧੰਨਕੁਰ ਦੌਧਰ ਦੀ, ਲੱਕ ਪਤਲਾ ਪੱਟਾਂ ਦੀ ਭਾਰੀ' ਵਾਲਾ ਹੈ ਉੱਥੇ ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ ਜ਼ੀਰੋ ਸਾਈਜ਼ ਵਾਲੀ ਜਿਸ ਪੰਜਾਬਣ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਉਹ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚਲੀ ਪੰਜਾਬਣ ਤੋਂ ਕੋਹਾਂ ਦੂਰ ਹੈ:-

ਲੱਕ ਟਵੰਟੀ ਏਟ ਕੁੜੀ ਦਾ
ਫੋਰਟੀ ਸੈਵਨ ਵੇਟ ਕੁੜੀ ਦਾ[16]

ਇਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅੰਦਰ ਇਕ ਵਿਆਂਦੜ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਨੂੰ ਸਭ ਕੁਝ ਮੰਨਦੀ ਹੋਈ ਉਸੇ ਨਾਲ ਜਿਉਣ ਮਰਨ ਦੇ ਵਚਨ ਵਿਚ ਬੱਝੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਪਰ ਸੁਰਜੀਤ ਬਿੰਦਰਖੀਆ ਉਸ ਸਰਵਗੁਣ ਸੰਪੰਨ ਔਰਤ (ਰਕਾਨ) ਦਾ ਵੀ ਯਾਰ ਹੋਣ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਹੈਰਾਨੀ ਤਾਂ ਉਦੋਂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜਦੋਂ ਵੀਡੀਓ ਅੰਦਰ ਪਤੀ ਵਲੋਂ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਦਾ ਯਾਰ ਹੋਣ ਦੀ ਗੱਲ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਆਖ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਿਵੇਂ:-

ਤੂੰ ਨੀ ਬੋਲਦੀ ਰਕਾਨੇ ਤੂੰ ਨੀ ਬੋਲਦੀ
ਤੇਰੇ 'ਚ ਤੇਰਾ ਯਾਰ ਬੋਲਦਾ

ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਕੇ ਮੀਡੀਆ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਲਾ ਰਿਹਾ ਸਗੋਂ ਆਉਣ ਵਾਲੀਆਂ ਪੀੜ੍ਹੀਆਂ ਦਾ Mindset ਵੀ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸ਼ਹਿਰੀਕਰਨ ਅਤੇ ਇਕਹਿਰੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੇ ਹੋਂਦ ਵਿਚ ਆਉਣ ਨਾਲ ਸੰਯੁਕਤ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਵਿਚਲੀ ਅਪਣੱਤ, ਸਾਂਝ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਕਿਧਰੇ ਗੁੰਮ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਦਾਦਾ-ਦਾਦੀ ਦੀ ਛਾਂ ਵਿਚ ਪਲਣ ਵਾਲਾ ਬੱਚਾ ਅਨੇਕਾਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਸੁਣ ਕੇ ਅਣਖੀਲਾ, ਬਹਾਦਰ ਨੌਜਵਾਨ/ਮੁਟਿਆਰ ਬਣਦਾ ਸੀ, ਕਿਉਂਕਿ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿਚਲੇ ਨਾਇਕ ਦੇਸ਼-ਭਗਤ, ਯੋਧੇ, ਗੁਰੂ, ਪੀਰ, ਪੈਗੰਬਰ ਸਨ।ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਬੱਚਾ ਆਪਣਾ ਰੋਲ ਮਾਡਲ ਮੰਨਦਾ ਹੋਇਆ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਅੱਗੇ ਵੱਧਦਾ ਸੀ ਪਰ ਹੁਣ ਉਹ ਦਿਸ਼ਾਹੀਣ, ਵਿਵੇਕਹੀਣ ਅਤੇ ਖਪਤਕਾਰੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਅੰਗ ਬਣ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਸ਼ੋਸਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਮਾਰ ਨੇ ਦੇਸ਼ ਦਾ ਭਵਿੱਖ ਕਹੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਮੋਬਾਇਲ ਫ਼ੋਨ ਅੰਦਰ ਬੰਦ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਹੁਣ ਉਸਦੇ ਰੋਲ ਮਾਡਲ/ਨਾਇਕ ਭਗਤ ਸਿੰਘ, ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ, ਦੁੱਲਾ ਭੱਟੀ, ਬੰਦਾ ਸਿੰਘ ਬਹਾਦਰ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਗੋਲੀਆਂ ਚਲਾਉਣ ਦਾ ਸ਼ੌਕ ਰੱਖਣ ਵਾਲਾ ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ, ਚਾਰ ਬੋਤਲ ਵੋਡਕਾ ਪੀਣ ਵਾਲਾ ਹਨੀ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਵਾਲਾਂ ਨੂੰ ਜੈਲ ਲਾ ਕੇ ਜਿੰਦੇ ਕੁੰਡੇ ਬੰਦ ਕਰਨ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦੇਣ ਵਾਲਾ ਜੈਜੀ ਬੀ ਹੈ।

ਇਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਅੱਤ ਵਿਕਸਿਤ ਰੂਪ ਬਜ਼ੁਰਗਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੰਦਰੋਂ ਰੂਹ ਦਾ ਸਕੂਨ ਖੋਹ ਕੇ ਲੈ ਗਿਆ ਹੈ। ਬੁਢਾਪਾ ਕਦੇ ਵੀ ਪੈਸੇ, ਸ਼ੁਹਰਤ, ਸਵਾਦ, ਵਸਤੂਆਂ ਦਾ ਮੁਹਤਾਜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਪਰ ਸਾਰੀ-ਸਾਰੀ ਰਾਤ ਇੱਕਲਿਆਂ ਗੁਜ਼ਾਰਨੀ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਸਮਾਜ ਅੰਦਰ ਆਪਣੇ-ਆਪਣੇ ਫ਼ੋਨਾਂ ਵਿਚ ਰੁੱਝੇ ਹੋਏ ਨੂੰਹ-ਪੁੱਤ, ਪੋਤੇ-ਪੋਤੀਆਂ ਨਾਲ ਦੋ ਪਲ ਵੀ ਨਾ ਗੁਜਾਰ ਸਕਣ ਦਾ ਦੁੱਖ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੱਢ-ਵੱਢ ਖਾਂਦਾ ਹੈ।ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਦੈਂਤ ਨੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿਚੋਂ ਸਹਿਨਸ਼ੀਲਤਾ, ਸਤਿਕਾਰ, ਪਿਆਰ ਭਾਵ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਮਨਫ਼ੀ ਕਰ ਦਿੱਤੀਆਂ ਹਨ। ਦੁਨੀਆ ਦਾ ਕੋਈ ਵੀ ਮੀਡੀਆ ਕਿਸੇ ਦਾਦੇ-ਦਾਦੀ ਨੂੰ ਉਸਦੇ ਪੋਤੇ-ਪੋਤੀ ਦੀਆਂ ਤੋਤਲੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਤੋਂ ਵੱਧ ਸਕੂਨ ਨਹੀਂ ਦੇ ਸਕਦਾ। ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਅਨੈਤਿਕ ਵਰਤਾਰੇ ਪੰਜਾਬੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਘਾਣ ਕਰਦੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਜੋ ਬਿੰਬ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਉਸਾਰਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ ਕਿਸੇ ਸੁਪਨ ਸੰਸਾਰ ਤੋਂ ਘੱਟ ਨਹੀਂ। ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਪਾਉਣ ਹਿੱਤ ਹਰ ਪੰ-ਜਾਬੀ ਆਪਣੀ ਜਨਮ ਭੋਂਇ ਛੱਡ ਕੇ, ਕਰਜਾ ਚੁੱਕ ਕੇ ਕੈਨੇਡਾ ਜਾਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਖੇਤਾਂ ਵਿਚ ਮਿੱਟੀ ਨਾਲ ਮਿੱਟੀ ਹੁੰਦੇ ਜੱਟ ਨੂੰ ਹੁਣ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਕੋਠੀਆਂ ਵਿਚ ਰਹਿਣ ਵਾਲਾ, ਗੱਡੀਆਂ ਵਿਚ ਘੁੰਮਣ ਵਾਲਾ, ਸੂਟਿਡ-ਬੂਟਿਡ ਜੈਂਟਲਮੈਨ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਜਦੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਉਸ ਸੁਪਨਈ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਧਰਤੀ 'ਤੇ ਪਹੁੰਚਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਅਸਲੀਆਤ ਨਾਲ ਦੋ-ਚਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪੜ੍ਹਾਈ ਕਰਨ ਜਾਂਦੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀਆਂ ਪੈਸਿਆਂ ਦੀ ਖ਼ਾਤਿਰ ਜਿਸਮ-ਫਰੋਸ਼ੀ ਦੇ ਧੰਦੇ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਪਰ ਆਪਣੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਨੂੰ ਅਸਲੀਅਤ ਤੋਂ ਅਣਜਾਣ ਹੀ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਮੀਡੀਆ ਕਦੇ ਵੀ ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਸੰਘਰਸ਼ ਨੂੰ ਦਿਖਾਉਣ ਪ੍ਰਤੀ ਸੰਜੀਦਾ ਨਹੀਂ ਜਾਪਦਾ ਅਤੇ ਸ਼ਾਇਦ ਅਸੀਂ ਆਪ ਵੀ ਸੱਚ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਨਹੀਂ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ। ਕਿਉਂਕਿ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਕੰਮ ਤੁਹਾਡੀ ਸੋਚ ਉਪਰ ਲਗਾਤਾਰ ਵਾਰ ਕਰਨਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹ ਆਪਣੇ ਇਸ ਮਕਸਦ ਵਿਚ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਕਬੂਲਦਾ ਹੋਇਆ ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਪੱਛਮੀ ਸਭਿਅਤਾ ਅਧੀਨ ਫਾਸਟ-ਫੂਡ ਦਾ ਆਦੀ ਵੀ ਬਣ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਉਸ ਨੂੰ ਮਾਂ ਦੇ ਹੱਥ ਦਾ ਬਣਾਇਆ ਖਾਣਾ ਪਸੰਦ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਬਰਗਰ, ਪੀਜ਼ਾ, ਨੂਡਲਜ਼, ਪਾਸਤਾ, ਫ੍ਰੈਂਚ ਫਰਾਈਜ਼ ਉਸਦੀ ਪਸੰਦ ਬਣ ਚੁੱਕੇ ਹਨ।

ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਇਸ ਹਨੇਰੀ ਨੇ ਮਨੁੱਖੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੰਦਰੋਂ ਰੂਹ ਦਾ ਸਕੂਨ, ਸਹਿਨਸ਼ੀਲਤਾ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕਤਾ,

ਪਿਆਰ, ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ, ਮਨਫ਼ੀ ਕਰ ਦਿੱਤੇ ਹਨ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਅਧੀਨ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਮਾਧਿਅਮ ਬਣਾ ਕੇ, ਫੁਲਕਾਰੀ ਨੂੰ ਸਾਰੀ ਦੁਨੀਆ ਅੰਦਰ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਕਰਕੇ, ਅੰਗਰੇਜ਼ਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਭੰਗੜਾ ਕਰਵਾ ਕੇ, ਪੰਜਾਬੀ ਖਾਣੇ ਖੁਆ ਕੇ ਜਿਸ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਅੰਦਰੋਂ ਖੋਖਲਾ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਉਹ ਚਿੰਤਾਜਨਕ ਹੈ। ਨੌਜਵਾਨ ਵਰਗ ਆਪਣੇ ਹੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਤੋਂ ਦੂਰ ਹੋ ਕੇ ਪੱਛਮੀ ਰੰਗ ਵਿਚ ਰੰਗਿਆ ਹੋਇਆ ਦਿਸ਼ਾਹੀਣ, ਵਿ-ਵੇਕਹੀਣ, ਖਪਤਕਾਰੀ ਅਤੇ ਬਜ਼ਾਰਵਾਦ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬ ਬਣਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਸੰਖੇਪ ਚਰਚਾ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਅੱਜ ਦੇ ਯੁੱਗ ਦਾ ਅਜਿਹਾ ਖ਼ਤਰਨਾਕ ਹਥਿਆਰ ਬਣ ਚੁੱਕਾ ਹੈ ਜੋ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਅਧੀਨ ਅਨੇਕਾਂ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦੀ ਵੱਖਰਤਾ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਇਕ ਖ਼ਾਸ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸਿਰਜਣ ਲਈ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਬਦਲਣ ਅਤੇ ਮਨਚਾਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਵੱਲ ਮੋੜਨ ਵੱਲ ਰੁਚਿਤ ਹੈ, ਜਿਸਦਾ ਮਕਸਦ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਜਗਤ ਦਾ ਹੁਕਮ ਮੰਨਣਾ ਅਤੇ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਜਿੱਥੇ ਬੇਹੱਦ ਸੁਚੇਤ ਰਹਿਣ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ ਉੱਥੇ ਹੀ ਮੀਡੀਆ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਨੂੰ ਵਪਾਰਕ ਸੋਚ ਛੱਡ ਕੇ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਉਸਾਰੂ ਭਵਿੱਖ ਲਈ ਯਤਨਸ਼ੀਲ ਹੋਣਾ ਪਵੇਗਾ। ਪਰ ਕੀ ਅਸੀਂ ਆਪਣੀ ਅਜੋਕੀ ਸਥਿਤੀ ਲਈ ਕੇਵਲ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਹੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਸਮਝਦੇ ਹਾਂ, ਕੀ ਅਸੀਂ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਲਈ ਬਿਲਕੁਲ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਨਹੀਂ? ਜੇਕਰ ਅਸੀਂ ਹੋਟਲ ਅੰਦਰ ਜਾ ਕੇ ਮੈਨਯੂ ਕਾਰਡ ਵਿਚੋਂ ਆਪਣੀ ਪਸੰਦ ਦਾ ਖਾਣਾ ਚੁਣ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਮੀਡੀਆ ਵਲੋਂ ਪਰੋਸੀ ਜਾ ਰਹੀ ਸਮੱਗਰੀ ਵਿਚੋਂ ਅਸੀਂ ਸਹੀ ਕਿਉਂ ਨਹੀਂ ਚੁਣ ਪਾ ਰਹੇ ਜਾਂ ਫਿਰ ਅਸੀਂ ਸਹੀ ਅਤੇ ਗਲਤ ਵਿਚ ਫ਼ਰਕ ਦੇਖਣਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦੇ। ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਵਿਹੂਣੀਆਂ ਕੌਮਾਂ ਸਮੇਂ ਦੇ ਚਿੱਤਰਪਟ ਤੋਂ ਬਹੁਤ ਜਲਦ ਲੁਪਤ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਕਿਸੇ ਵੀ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਪਛਾਣ ਉਸਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਹੀ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਮੁੱਲਾਂ, ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦੇ ਸਰੀਰ ਅੰਦਰ ਰੂਹ ਵਾਂਗ ਧੜਕਦੇ ਰਹਿਣਾ ਹੁਣ ਹੋਰ ਵੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਾਸਤੇ ਸਾਨੂੰ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਸਾਰਥਕ ਕਦਮ ਚੁੱਕਣ ਬਾਰੇ ਸੋਚਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਸਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਕੀਤੀ ਜਾ ਸਕੇ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਲਫ਼ਜ਼ਾਂ ਨਾਲ ਹੀ ਮੈਂ ਆਪਣੀ ਗੱਲ ਨੂੰ ਵਿਰਾਮ ਦਿੰਦੀ ਹਾਂ।

## ਹਵਾਲੇ


1. **ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ (ਡਾ.)**, 'ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ', ਆਰਸੀ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼ ਦਿੱਲੀ, 2017, ਪੰਨਾ 41
2. **ਰਜਿੰਦਰ ਪਾਲ ਬਰਾੜ, ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ, ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ ਚੀਮਾ**, 'ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦ', ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਨਾ 18
3. **ਹ. ਕ. ਮਨਮੋਹਨ ਸਿੰਘ (ਡਾ.)**, 'ਪੰਜਾਬੀਅਤ ਸੰਕਲਪ ਅਤੇ ਸਰੂਪ', ਧਨਵੰਤ ਕੌਰ (ਡਾ./ਸੰਪਾਦਤ), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2000, ਪੰਨਾ 4
4. Youtube.Com, ਹਨੀ ਸਿੰਘ- ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ
5. ਉਹੀ, ਦਿਲਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋਂ
6. ਉਹੀ, ਸ਼ਰਨ ਮਾਨ
7. ਉਹੀ, ਹਰਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋਂ
8. ਉਹੀ, ਦੀਪ ਕਰਨ
9. ਉਹੀ, ਰਣਜੀਤ ਬਾਵਾ
10. ਉਹੀ, ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ
11. ਉਹੀ, ਨਿੰਜਾ
12. ਉਹੀ, ਸੁੱਖੇ
13. ਉਹੀ, ਦਿਲਪ੍ਰੀਤ ਢਿੱਲੋਂ
14. ਉਹੀ, ਮਨਕੀਰਤ ਔਲਖ
15. ਜਸਵਿੰਦਰ ਚਾਹਲ, ਅਠਾਰ੍ਹਵਾਂ ਸਾਲ (ਕਵਿਤਾ)
16. Youtube.Com, ਦਿਲਜੀਤ ਦੁਸਾਂਝ
17. ਉਹੀ, ਸੁਰਜੀਤ ਬਿੰਦਰਖੀਆ

# ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ

ਰਾਜਦੀਪ ਸਿੰਘ ਸਿੱਧੂ

ਸਭਿਆਚਾਰ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿਚ ਇਕ ਅਤਿ ਵਿਸ਼ਾਲ ਸੰਕਲਪ ਹੈ। ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਵਿਚ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਰ ਖੇਤਰ ਵਿਚਲੀਆਂ ਉਹ ਕਿਰਿਆਵਾਂ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਕਰਨ ਦੇ ਵਸੀਲੇ ਆ ਜਾਂਦੇ ਹਨ, ਜੋ ਇਕ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਦੂਜੇ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜਾਂ ਨਾਲੋਂ ਨਿਖੇੜਦੇ ਹਨ। ਪਦਾਰਥਕ, ਸਮਾਜਕ ਅਤੇ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਆਉਣ ਨਾਲ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਬਦਲਾਅ ਲਾਜ਼ਮੀਂ ਹੈ। ਸਮਕਾਲੀ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦਾ ਸਭਿਆਚਾਰ, ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ/ਗਲੋਬਲੀਕਰਨ ਦੀ ਮਾਰ ਹੇਠ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰ ਦੀ ਸੰਚਾਰ ਟੈਕਨਾਲੋਜੀ ਨੇ ਮਾਨਵੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ।

ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਬਹੁ-ਪੱਖੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਗੀਤ, ਸੰਗੀਤ, ਪਹਿਰਾਵਾ, ਪੇਂਡੂ ਰਹਿਣ-ਸਹਿਣ, ਲੋਕ-ਕਥਾਵਾਂ, ਲੋਕ-ਨਾਚ, ਲੋਕ-ਕਿੱਤੇ, ਲੋਕ-ਰੰਗ ਆਦਿ ਦੀ ਭਰਮਾਰ ਹੈ ਅਤੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਬਦਲਦੇ ਮਿਜ਼ਾਜ਼ ਨਾਲ ਆਏ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਪਰਿਵਰਤਨ ਦਾ ਝਲਕਾਰਾ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਆਉਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲੁਕਵੇਂ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਨ ਅਤੇ ਇਸਨੂੰ ਜਨ ਮਾਨਸ ਦੁਆਰਾ ਜ਼ੁਬਾਨੀ, ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਰ ਪੀੜ੍ਹੀ ਜਾਂ ਲਿਖਤੀ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਾਂਭਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਆਪੀ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਸਥਾਰ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਪਰਿਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਇਸ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣਾਂ ਦੇ ਢੰਗ/ਤਰੀਕਿਆਂ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਬਦਲ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਬਦਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਰੂਪਾਂ ਜਿਵੇਂ ਸੈਟੇਲਾਈਟ, ਕੇਬਲ ਅਤੇ ਡਿਜੀਟਲ ਟੈਕਨਾਲੋਜੀ ਦੁਆਰਾ ਨਿਰਧਾਰਿਤ ਕੀਤਾ ਹੋਇਆ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਪਰੋਸਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਦਾ ਹਰ ਬੰਦਾ ਸੁਚੇਤ ਜਾਂ ਅਚੇਤ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਲੋੜ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਉਦਯੋਗ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਅਜਿਹੀਆਂ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਿਰਜਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕੋਈ ਥਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ ਜੋ ਲਾਭ ਕਮਾ ਕੇ ਨਾ ਦੇ ਸਕਦੀਆਂ ਹੋਣ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਆਪੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਪਰਿਵਰਤਨ ਤੋਂ ਅਲੱਗ ਨਹੀਂ ਕਿਉਂਕਿ ਜਿੱਥੇ ਬਾਕੀ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ 'ਚ ਮੀਡੀਆ ਕਰਕੇ ਪਰਿਵਰਤਨ ਆ ਰਹੇ ਹਨ ਉਥੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ 'ਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਆਉਣੇ ਵੀ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹਨ। ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਗਵਾਹ ਹੈ ਕਿ ਬਾਹਰੋਂ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਹਰੇਕ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੂੰ ਲੋਕ ਮਾਨਸ ਨੇ ਕਬੂਲਿਆ ਹੈ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੀ ਆਪਣੀ ਇਕ ਪਹਿਚਾਣ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਲੋਕ ਮਾਨਸ ਨੂੰ ਨਿਯੰਤਰਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਸਮਕਾਲੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਭਿੰਨ-ਭਿੰਨ ਖੇਤਰਾਂ ਉੱਪਰ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੇਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਵਿਚ ਕੁਝ ਚੰਗਾ ਵੀ ਤੇ ਮਾੜਾ ਵੀ ਹੈ।

ਸੰਚਾਰ ਟੈਕਨਾਲੋਜੀ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪਾਂ ਦੇ ਵਿਚੋਂ ਇਕ ਰੂਪ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਹੈ ਜੋ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵਾਪਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਗਤੀਵਿਧੀਆਂ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਨਾਲੋਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਸ ਕਰਕੇ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਸਦੀ ਵਰਤੋਂ ਸਮਾਜ ਦਾ ਹਰ ਉਹ ਵਿਅਕਤੀ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਜੋ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਬਾਰੇ ਥੋੜ੍ਹੀ ਬਹੁਤੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਸੁਚੇਤ ਅਤੇ ਅਚੇਤ ਤੌਰ 'ਤੇ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਸੂਚਨਾ ਦੇ ਨਾਲ-ਭਾਲ ਮਨੋਰੰਜਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਵਜੋਂ ਵੀ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਬਾਕੀ ਰੂਪਾਂ ਨਾਲੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦਾ ਵੱਟਸਐਪ ਅਤੇ ਫੇਸਬੁੱਕ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਵਧੇਰੇ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਉਹ ਅਸਾਨੀ ਨਾਲ ਵਰਤ ਸਕਦੇ ਹਨ।

ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਟੀ.ਵੀ. ਦੇ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਸੰਯੁਕਤ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਜਦ ਟੀ.ਵੀ. ਦੀ ਇਜਾਦ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਹ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਵਿਚ ਪਹੁੰਚਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਸ ਦੇ ਨਤੀਜੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਟੀ.ਵੀ. ਦੇ ਪ੍ਰਯੋਗ ਹੋਣ ਤੋਂ ਕੁਝ ਸਾਲਾਂ ਬਾਅਦ ਹੀ ਸੰਯੁਕਤ ਪਰਿਵਾਰ ਟੁੱਟਣੇ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਦਾ ਕਾਰਨ ਟੀ.ਵੀ. ਨਹੀਂ ਸੀ ਬਲਕਿ ਟੀ.ਵੀ. ਤੇ ਪੇਸ਼ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਟੀ.ਵੀ. ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਦਾ ਵਸੀਲਾ ਹੈ। ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਤਾਂ ਠੀਕ ਸੀ ਕਿਉਂਕਿ ਵੱਡੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਤੋਂ ਟੁੱਟ ਕੇ ਇਕ ਛੋਟਾ ਪਰਿਵਾਰ ਬਾਕੀ ਸੀ ਪਰ ਅੱਜ ਦੀ ਮੀਡੀਆ ਤਕਨੀਕ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਬਿਲਕੁਲ ਹੀ ਜਿਸਮਾਨੀ ਅਤੇ ਮਾਨਸਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਅਲੱਗ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ 'ਚ

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ, ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਰੂਪ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਲਤ ਇਹਨੀ ਜ਼ਿਆਦਾ ਵੱਧਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ ਕਿ ਹਰ ਉਮਰ ਦਾ ਵਿਅਕਤੀ ਇਸ ਦੀ ਪਕੜ ਤੋਂ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਬਚਾ ਨਹੀਂ ਪਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਾਡੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੇ ਆਪਸੀ ਜੀਆਂ ਵਿਚ ਇੱਕ ਅਜਿਹੀ ਅਣਦਿਸਦੀ ਕੰਧ ਉਸਾਰ ਦਿੱਤੀ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਘਰ ਵਿਚ ਛੋਟਾ ਜਿਹਾ ਪਰਿਵਾਰ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਆਪਸ ਵਿਚ ਗੱਲ-ਬਾਤ ਕਰਨ ਦੀ ਬਜਾਏ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਵਿਅਸਤ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਾਂ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰ 'ਚ ਇੱਕ ਵੱਡਾ ਪਰਿਵਰਤਨ ਇਹ ਲਿਆਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਨਿੱਜ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਚ ਬੈਠੇ ਵੀ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੇ ਇੱਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਜਦੋਂ ਘਰ ਵਿਚ ਕੋਈ ਮਹਿਮਾਨ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਸੀਂ ਤਦ ਵੀ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆਂ ਦੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਹਾਂ ਨਾ ਕਿ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰਕ ਜੀਆਂ ਨਾਲ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਸਾਡੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਪਰਿਵਾਰਕ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ 'ਚ ਪਰਿਵਾਰਕ ਸਾਂਝ ਤੋਂ ਅੱਗੇ ਸਾਡੀ ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਦਾ ਵੀ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਮਹੱਤਵ ਸੀ। ਉਹ ਚਾਹੇ ਸਾਡੇ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀ ਹੋਵੇ, ਚਾਹੇ ਧਾਰਮਿਕ ਸਾਂਝ ਹੋਵੇ, ਜਾਤ ਪਾਤ ਤੋਂ ਉਪਰ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀ ਸਾਂਝ ਤੇ ਵੱਖੋ-ਵੱਖਰੇ ਸਮਾਜ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਆਪਸੀ ਸਾਂਝ ਬਰਕਰਾਰ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ। ਪਰ ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ 'ਚ ਸਾਡੀ ਇਸ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਮੀਡੀਆ ਅਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਖੰਡਿਤ ਕਰਨ ਦੀਆਂ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ਾਂ ਲਗਾਤਾਰ ਚੱਲ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਇਹ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ਾਂ ਸੁਚੇਤ ਜਾਂ ਅਚੇਤ ਰੂਪ ਵਿਚ ਜਾਰੀ ਹਨ। ਆਏ ਦਿਨ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਧਰਮਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਗੁਰੂਆਂ, ਪੀਰਾਂ, ਫ਼ਰੀਕਾਂ ਅਤੇ ਹੋਰ ਸੰਤਾਂ ਮਹਾਂਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੀਆਂ ਤਸਵੀਰਾਂ ਨਾਲ ਕੀਤੀਆ ਜਾਂਦੀਆਂ ਛੇੜਖਾ-ਨੀਆਂ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਲਈ ਖ਼ਤਰਾ ਬਣਦੀਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਧਰਮਾਂ, ਜਾਤਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ ਕੁਝ ਲੋਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਭੜਕਾਊ ਜਾਂ ਹਿੰਸਾਤਮਕ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਕੀਤੀ ਗੱਲਬਾਤ ਵੀ ਸਾਡੀ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲਾਉਣ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਗੁਆਚਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਟੁੱਟਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਦੇ ਬੱਚੇ ਮੋਬਾਇਲ ਜਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਬੱਚੇ ਹਨ। ਇਸ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ ਦੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਸੀ ਜੋ ਥੋੜ੍ਹਾ ਬਹੁਤ ਗਿਆਨ ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ ਤੋਂ ਅਤੇ ਬਾਕੀ ਆਪਣੇ ਦਾਦਾ-ਦਾਦੀ ਜਾਂ ਬਜੁਰਗਾਂ ਤੋਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਲੈਂਦੀ ਸੀ। ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਦੀ ਤਕਨੀਕ ਨੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਬੱਚਿਆਂ ਨਾਲੋਂ ਅਤੇ ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਮਾਪਿਆਂ ਨਾਲੋਂ ਵੱਖ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਦਾ ਬੱਚਾ ਜੋ ਵੀ ਚੰਗੇ ਮਾੜੇ ਸੰਸਕਾਰ ਸਿੱਖਦਾ ਹੈ ਉਹ ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ਮੋਬਾਇਲ ਤੋਂ ਹੀ ਸਿੱਖਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਜਨਰੇਸ਼ਨ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਜਾਂ ਮੋਬਾਇਲ ਦੀ ਜਨਰੇਸ਼ਨ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਬੱਚਿਆਂ ਦਾ ਘੰਟਿਆ-ਬੱਧੀ ਮੋਬਾਇਲ ਫੋਨ ਜਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਰਹਿਣਾ ਇਕ ਗੰਭੀਰ ਸਮੱਸਿਆ ਬਣਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਚ ਉਲਝੀ ਇਹ ਪੀੜ੍ਹੀ ਉਸ ਗਿਆਨ ਤੋਂ ਵਾਂਝੀ ਰਹਿ ਗਈ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਗਿਆਨ ਸਾਨੂੰ ਬਜੁਰਗਾਂ ਤੋਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਰ ਪੀੜ੍ਹੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦਾ ਆਉਂਦਾ ਸੀ। ਵੱਡੀ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਗੱਲ, ਬਜੁਰਗ, ਕਹਾਵਤ, ਅਖਾਣ ਜਾ ਮੁਹਾਵਰੇ ਰਾਹੀਂ ਐਨੇ ਸੌਖੇ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਸਮਝਾ ਦਿੰਦੇ ਸਨ ਕਿ ਉਹ ਵਿਅਕਤੀ ਨੂੰ ਉਮਰ ਭਰ ਯਾਦ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ ਪ੍ਰੰਤੂ ਅੱਜ ਦੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਹੀ ਅਸਲ ਗਿਆਨ ਦੀ ਦੁਨੀਆਂ ਮੰਨ ਲਿਆ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਤੇ ਵਿਅਸਤ ਸਾਡੀ ਅਜੋਕੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਦਾ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਖੋਰਾ ਲੱਗ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਜਿਥੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਲੱਗ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਥੇ ਹੀ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਸਭਿਆ-ਚਾਰਕ ਵੰਨਗੀਆਂ ਦੀ ਸਾਂਭ ਸੰਭਾਲ 'ਚ ਵੀ ਆਪਣਾ ਯੋਗਦਾਨ ਵੀ ਪਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵੰਨਗੀਆਂ ਦੀ-ਆਂ ਵਿਭਿੰਨ ਤਸਵੀਰਾਂ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਉਜਾਗਰ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ ਚਾਹੇ ਲੋਕ ਖੇਡਾਂ, ਪਹਿਰਾਵਾ, ਗਹਿਣੇ, ਲੋਕ-ਗੀਤ, ਲੋਕ-ਨਾਚ (ਗਿੱਧਾ-ਭੰਗੜਾ), ਪੁਰਾਣੇ ਪੰਜਾਬ ਦੀਆਂ ਤਸਵੀਰਾਂ ਆਦਿ ਕੁਝ ਵੀ ਹੋਣ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀਆਂ ਧੁੰਦਲੀਆਂ ਜਾ ਲੁਪਤ ਹੋਈਆਂ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵੰਨਗੀਆਂ ਨੂੰ ਤਸਵੀਰਾਂ, ਵੀਡਿਓ ਅਤੇ ਆਡੀਓ ਰਾਹੀਂ ਮੁੜ ਸੁਰਜੀਤ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਮੰਚ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਸੂਝਵਾਨ ਲੋਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਸਾਡੇ ਵਿਰਾਸਤੀ ਮੇਲਿਆਂ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼, ਖੂਹਾਂ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼, ਗੱਭਰੂ-ਮੁਟਿਆਰਾਂ ਦੇ ਲੋਕ-ਨਾਚ, ਬੱਚਿਆਂ ਦੀਆਂ ਖੇਡਾਂ, ਤ੍ਰਿੰਝਣ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਆਦਿ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਤੇ ਵਿਰਾਸਤੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਲੋਕ ਮਨਾਂ ਦੀ ਤਰਜਮਾਨੀ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਮੂਲ ਤੱਤ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ ਅਤੇ ਸਹਾਇਤਾ ਕਰਨਾ ਹੈ ਫਿਰ ਉਹ ਚਾਹੇ ਕਿਸੇ 'ਤੇ ਹੋ ਰਹੇ ਜ਼ੁਲਮ ਨੂੰ ਰੋਕਣਾ ਹੋਵੇ ਜਾ ਫਿਰ ਕਿਸੇ ਲੋੜਵੰਦ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਕਰਨਾ ਹੋਵੇ। ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੇ ਇਸ ਸੁਭਾਅ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪੂਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਇਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਮਨੁੱਖਤਾ ਨੂੰ ਜਿਉਂਦਾ ਰੱਖਿਆ ਜਾ ਸਕੇ। ਦੂਜਿਆਂ ਲਈ ਮਰ ਮਿਟਣ ਵਾਲੀ ਕੌਮ ਅੱਜ ਵੀ ਗੁਰੂਆਂ ਦੇ ਦਰਸਾਏ ਰਾਹ ਤੇ ਚੱਲ ਰਹੀ ਹੈ। ਖਾਲਸਾ ਐਡ ਇਸ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਉਦਾਹਰਨ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਮੁੱਖ ਮੀਡੀਆ 'ਚ ਉਹ ਜਗ੍ਹਾਂ ਨਹੀਂ ਮਿਲੀ ਜੋ ਮਿਲਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਸੀ, ਇਕ

ਦੋ ਟੀ.ਵੀ. ਚੈਨਲਾਂ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਬਾਕੀ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਉਸ ਵੱਲ ਜ਼ਿਆਦਾ ਧਿਆਨ ਨਹੀਂ ਦਿੱਤਾ ਪਰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਉਹਨਾਂ ਦੁਆਰਾ ਮਨੁੱਖਤਾ ਲਈ ਕੀਤੇ ਜਾ ਰਹੇ ਕੰਮ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਦੁਨੀਆਂ 'ਚ ਪਹੁੰਚਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦਾ ਸ਼ੰਦੇਸ਼ ਦਿੰਦੀਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਅਜਿਹੀਆਂ ਛੋਟੀਆਂ-ਛੋਟੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪਸਾਰਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ 'ਚ ਪੇਸ਼ ਨੈਤਿਕਤਾ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਜਿਉਂਦਾ ਰੱਖਿਆ ਜਾ ਸਕੇ।

ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੁਚੇਤ ਅਤੇ ਅਚੇਤ ਦੋਹਾਂ ਮਨਾਂ 'ਤੇ ਸਿੱਧੇ ਅਤੇ ਅਸਿੱਧੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਅਸਰ ਪਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਰਾਹੀਂ ਜਿੱਥੇ ਸਮਾਜਕ ਕੁਰੀਤੀਆਂ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਲਈ ਵਧੀਆ ਕਹਾਣੀਆਂ, ਤਸਵੀਰਾਂ, ਵੀਡਿਓ, ਆਡੀਓ ਆਦਿ ਸਮੱਗਰੀ ਨੂੰ ਸਾਂਝਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਉਥੇ ਹੀ ਕੁਝ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਮੱਗਰੀ ਨੂੰ ਵੀ ਸਾਂਝਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਸਾਡੀ ਮਾਨਵਤਾ ਜਾਂ ਮਨੁੱਖਤਾ ਲਈ ਖ਼ਤਰਾ ਸਾਬਿਤ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਮੱਗਰੀ ਦੇ ਲਗਾਤਾਰ ਸ਼ੇਅਰ ਹੋਣ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਅਜਿਹੀ ਦਲਦਲ ਵਿਚ ਫਸਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿੱਥੋਂ ਉਹ ਕਿਸੇ ਵੀ ਵਿਸ਼ੇ ਦਾ ਦੂਜਾ ਪੱਖ ਦੇਖਣਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦਾ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਕਈ ਵਾਰ ਅਜਿਹੇ ਹਨ੍ਹੇਰੇ ਅੰਦਰ ਚਲੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜਿਥੋਂ ਵਾਪਸ ਮੁੜਨ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਉਸ ਕੋਲ ਨਹੀਂ ਬਚਦੀ। ਕਿਸੇ ਵੀ ਚੀਜ਼ ਬਾਰੇ ਲੋੜ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਪ੍ਰਚਾਰ ਤੇ ਪਾਸਾਰ ਮਾਨਸਿਕ ਪਰੇਸ਼ਾਨੀ ਦਾ ਕਾਰਨ ਬਣ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਸਹੀ ਅਤੇ ਸੀਮਾ ਵਿਚ ਰਹਿ ਕਿ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਇਹ ਜਿੱਥੇ ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਵਧੀਆ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਆਪਣਾ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਵੇਗੀ ਉਥੇ ਹੀ ਇਹ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਜਿਉਂਦਾ ਰੱਖ ਸਕੇਗੀ।

ਸਭਿਆਚਾਰ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਚਿਆਰਾ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਕੋਈ ਵੀ ਪ੍ਰਤੀਕਿਰਿਆ ਜੋ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖਤਾ ਜਾਂ ਮਾਨਵਤਾ ਦੇ ਨਜ਼ਦੀਕ ਲੈ ਕੇ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਉਹ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਅੰਗ ਗਿਣੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਹਰ ਉਮਰ ਅਤੇ ਹਰ ਵਰਗ ਦਾ ਵਿਅਕਤੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਹ ਆਪਣੀ ਸੋਚ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਮਕਸਦ ਨੂੰ ਲੈ ਕੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਸਮੱਗਰੀ ਸਾਂਝੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਜੇਕਰ ਸਾਨੂੰ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਵੱਲ ਧਿਆਨ ਦਿਵਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਉਹ ਸਾਨੂੰ ਮੂਲ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਵੀ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵੀ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਵੀ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਜੋ ਸਾਡੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਬਦਲਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਬਦਲ ਵੀ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਅਸੀਂ ਜ਼ਮੀਨੀ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਆਪਣੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਤੋਂ ਦੂਰ ਹੁੰਦੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਸਾਡੀਆਂ ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਮਰ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਧੀਨ ਅਸੀਂ ਆਪਣੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਆਪਣੇ 'ਚੋਂ ਮਨਫ਼ੀ ਕਰਦੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਾਂ ਜਿਸ ਦਾ ਨਤੀਜਾ ਅਸੀਂ ਆਪਣੀ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚ ਦੇਖ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਸਾਡੇ ਬੱਚੇ ਗੁੱਸੇ ਖੋਰ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ, ਉਹਨਾਂ 'ਚ ਚਿੜਚਿੜਾਪਣ ਵਧਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਪਰਿਵਾਰਕ ਸਾਂਝ ਵਿਚ ਗਿਰਾਵਟ ਦਿਨ-ਬ-ਦਿਨ ਵੱਧਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ ਅਤੇ ਸਾਡਾ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰਾ ਖ਼ਤਮ ਹੁੰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ 'ਤੇ ਕੇਵਲ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਧਾਨ ਨੈਤਿਕਤਾ ਹੈ ਜੋ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਜਾਗਰੂਕ ਤਾਂ ਜ਼ਰੂਰ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਇਸ 'ਤੇ ਅਮਲ ਕਿੰਨਾ ਕਰਦੇ ਹਨ ਇਹ ਉਹਨਾਂ 'ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਹੈ। ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਾ ਇਹ ਫ਼ਰਜ ਬਣਦਾ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਅਜਿਹੇ ਤੱਥਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਜੱਗ ਜਾਹਰ ਕਰੀਏ ਜਿਸ ਨਾਲ ਸਾਡੇ ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਸਹੀ ਸੇਧ ਮਿਲ ਸਕੇ। ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਸਹੀ ਅਤੇ ਯੋਗ ਵਰਤੋਂ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੇ ਸਮੇਂ ਨੂੰ ਸੰਭਾਲਦੇ ਹੋਏ ਇਕ ਨਰੋਏ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਲਈ ਇਸ ਰਾਹੀਂ ਸਾਂਝੀ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸਮੱਗਰੀ ਨੂੰ ਨੈਤਿਕਤਾ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਨਜ਼ਦੀਕ ਲਿਆਂਦਾ ਜਾ ਸਕੇ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਸੀਂ ਆਪਣੀ ਕੀਮਤੀ ਵਿਰਾਸਤ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੀ ਸਾਂਭ ਸੰਭਾਲ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਅੰਦਰ ਨੈਤਿਕ ਗੁਣਾਂ ਦਾ ਸੰਚਾਰ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਜੋ ਇਕ ਨਰੋਏ ਅਤੇ ਵਿਕਸਤ ਮਨੁੱਖਤਾ ਵਾਲੇ ਸਮਾਜ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਹੋ ਸਕੇ।

# ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ : ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦ

ਦਵਿੰਦਰ ਦਵੀ

ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦ ਬਾਰੇ ਚਿੰਤਨ ਕਰਦਿਆਂ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਕਰ ਲੈਣਾ ਬਹੁਤ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੈ ਕਿ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਸਰੋਕਾਰ ਹਮੇਸ਼ਾ ਬਦਲਦੇ ਰਹੇ ਹਨ, ਕਿਉਂਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਹਰ ਸਮੇਂ ਇਕੋ ਸਮਾਜ ਨਾਲ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਇਹ ਤਿੰਨੋਂ ਨਿਰੰਤਰ ਪਰਿਵਰਤਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਬਹੁਤ ਹੀ ਲਚਕੀਲੇ ਤੇ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਵਰਤਾਰੇ ਵਜੋਂ ਸਰੋਤਿਆਂ ਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਇੰਟਰਨੈੱਟ, ਮੋਬਾਇਲ, ਅਖ਼ਬਾਰ ਅਤੇ ਰੇਡੀਓ ਕੁਝ ਅਜਿਹੀਆਂ ਕੇਂਦਰੀ ਮਦਾਂ ਹਨ ਜੋ ਸੂਚਨਾ ਅਤੇ ਸੰਚਾਰ ਤਕਨਾਲੋਜੀ ਦਾ ਮੁੱਖ ਬਿੰਦੂ ਕਹੀਆਂ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ। ਪਿਛਲੇ ਤਕਰੀਬਨ ਦੋ ਦਹਾਕਿਆਂ ਤੋਂ ਵੀ ਘੱਟ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਇਨ੍ਹਾਂ ਮਦਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਤੰਤਰਾਂ ਨੇ ਨਾ ਸਿਰਫ਼ ਪੰਜਾਬੀ, ਬਲਕਿ ਵਿਸ਼ਵ ਦੇ ਸਾਰੇ ਵਿਕਾਸਸ਼ੀਲ ਸਮਾਜਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਘੇਰੇ ਵਿਚ ਜਕੜ ਲਿਆ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਅੰਤਰ ਸੰਵਾਦ ਉੱਤੇ ਚਰਚਾ ਕਰਨ ਸਮੇਂ ਸਾਨੂੰ ਸਤਹੀ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਪ੍ਰਾਪਤ ਮੀਡੀਆ ਤੰਤਰ ਦੀ ਨਵੇਕਲੀਆਂ ਤੇ ਵਰਤਮਾਨ ਦੀਆਂ ਤੈਹਾਂ ਵਿਚ ਕਾਰਜਸ਼ੀਲ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਲੰਮੇ ਸਮੇਂ ਦੀਆਂ ਯੋਜਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।

ਇਕ ਵਾਰੀ ਅਮਰਜੀਤ ਗਰੇਵਾਲ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤ ਵਿਸ਼ੇ ਅਧੀਨ ਦਿੱਤੇ ਇਕ ਭਾਸ਼ਣ ਰਾਹੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਉੱਤੇ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਦੇ ਨਕਸ਼ ਉਲੀਕਦਿਆਂ ਭਵਿੱਖੀ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਅਤੇ ਅਕਾਦਮਿਕ ਕਾਰਜਾਂ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕੀਤੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਆਪਣੇ ਭਾਸ਼ਣ ਵਿਚ ਕਿਹਾ ਕਿ ਅੱਜ ਜਦੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦਾ ਸੰਘਰਸ਼ ਦਾ ਰਸਤਾ ਤਿਆਗ ਆਤਮ-ਹੱਤਿਆਵਾਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਮਸਲਾ ਕੇਵਲ ਰਾਜਨੀਤਕ ਜਾਂ ਆਰਥਿਕ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਸਭਿਆਚਾਰਕ-ਰਾਜਨੀਤਕ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਮਸਲੇ ਦਾ ਕੇਂਦਰੀ ਸੂਤਰ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦੀ ਮੈਂ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਵਿਚ ਅਹਿਮ ਰੋਲ ਅਦਾ ਕਰ ਰਹੇ ਸਮਕਾਲੀ ਮੀਡੀਆ ਵਿਚ ਨਿਹਿਤ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਜਿਹੜੀ ਉਸ ਦੇ ਹੋਣ-ਥੀਣ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਸਾਰਥਕ ਚਿੰਨ੍ਹ ਹੈ , ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਮੀਡੀਆ ਦੁਆਰਾ ਹਾਸ਼ੀਏ ਤੇ ਧੱਕ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੀ ਇਸ ਹਾਸ਼ੀਆਗਤ ਸਥਿਤੀ ਦੇ ਚਲਦਿਆਂ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦਾ ਕੁਝ ਵੀ ਗੌਲਣਯੋਗ ਨਹੀਂ ਬਣਦਾ ਤੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਪ੍ਰਾਪਤੀਆਂ ਵੀ ਅੱਖੋਂ ਉਹਲੇ ਹੀ ਰਹਿ ਜਾਂਦੀਆਂ ਜਾਂ ਕਰ ਦਿੱਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਵੱਡਾ ਹਿੱਸਾ ਸਥਾਪਿਤ ਹਕੂਮਤੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਪਿੱਛਲੱਗ ਬਣ ਕੇ ਕੁਝ ਗੌਲਣਯੋਗ ਬਣ ਜਾਣ ਦਾ ਭਰਮ ਭਾਲਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਤੋਂ ਪਾਸਾ ਵੱਟ ਚੁੱਕਾ ਹੈ ਅਤੇ ਹੁਣ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਫ਼ਿਕਰ ਕੇਵਲ ਪੰਜਾਬੀ ਲੇਖਕਾਂ, ਪੰਜਾਬੀ ਅਧਿਆਪਕਾਂ, ਵਿਦਿਆਰਥੀਆਂ, ਪੰਜਾਬੀ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਨੂੰ ਰਹਿ ਗਿਆ ਹੈ ਤੇ ਅਜਿਹਾ ਵਾਪਰਨਾ ਨਿਰਸੰਦੇਹ ਬੇਹੱਦ ਚਿੰਤਾ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦਾ ਇਹ ਭੁੱਲ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਆਪਣੀ ਭਾਸ਼ਾ ਕੇਵਲ, ਇਕ ਭਾਸ਼ਾ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਸਗੋਂ ਇਕ ਪੂਰਾ ਸੰਸਾਰ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਿਉਣ ਦੀ ਵਿਸ਼ਵ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ। ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਨੇ ਜੇ ਜਿਊਂਦੇ ਰਹਿਣਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ ਜਿਊਂਦਾ ਰੱਖਣਾ ਪਵੇਗਾ ਅਤੇ ਇਸ ਲਈ ਸਭ ਤੋਂ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਇਸ ਨੂੰ ਤਕਨੀਕੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਸਮਰੱਥ ਕਰੇ। ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ, ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਸੰਚਾਰ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਭਾਸ਼ਾ ਹੈ, ਇਸ ਦੀ ਲੋੜ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰ ਨਹੀਂ ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਲਈ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਤੋਂ ਵੀ ਪਹਿਲੀ ਲੋੜ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਕਿਹਾ ਕਿ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਤਕਨੀਕੀ ਵਿਕਾਸ ਹਿੱਤ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਕਾਰਪੋਰਾ ਵਿਕਸਿਤ ਕਰਨਾ ਹੋਵੇਗਾ ਅਤੇ ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਆਟੋਮੈਟਿਕ ਟ੍ਰਾਂਸਲੇਸ਼ਨ ਅਤੇ ਕੰਪਿਊਟਰਾਈਜ਼ ਲੈਂਗੂਏਜ ਲਰਨਿੰਗ ਵਰਗੇ ਖੇਤਰਾਂ ਨੂੰ ਵਿਕਸਿਤ ਕਰਨਾ ਪਏਗਾ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਸਾਰੀ ਪੰਜਾਬੀ ਯਾਦ ਨੂੰ ਡਿਜੀਟਲਾਈਜ਼ ਕਰਕੇ ਸਾਈਬਰ ਸਪੇਸ ਤੇ ਉਪਲਬਧ ਕਰਵਾਉਣਾ ਵੀ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ਾਂ ਨਾਲ ਹੀ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦਾ ਆਪਣੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਵਚਨ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਜਿਊਂਦਾ ਰੱਖ, ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਜਿਊਣ-ਜੋਗਾ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਪਿੱਛੇ ਜਿਹੇ ਹੋਏ ਇਕ ਸਰਵੇਖਣ ਨੇ ਤੌਖ਼ਲੇ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ ਸਨ ਕਿ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਗਲੇ ਸਾਲਾਂ ਵਿਚ ਖ਼ਤਮ ਹੋ ਜਾਵੇਗੀ ਪਰ ਜਾਪਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦਾ ਇਕ ਡਰਾਵਾ ਜਾਂ ਧਮਕੀ ਹੀ ਹੈ। ਵੱਡੀਆਂ ਤਾਕਤਾਂ ਜਾਂ ਜ਼ੁਬਾਨਾਂ ਭਾਵੇਂ ਛੋਟੀਆਂ ਜ਼ੁਬਾਨਾਂ ਨੂੰ ਹੜੱਪ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਵਿਚ ਹਨ ਪਰ ਸਾਡੀ ਜਾਚੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਇਕ ਅਜਿਹਾ

ਸਥਾਨ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰ ਚੁੱਕੀ ਹੈ, ਜਿਥੇ ਇਸ ਦੀ ਜੇ ਹੋਰ ਤਰੱਕੀ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦੀ, ਤਾਂ ਘੱਟੋ-ਘੱਟ ਇਸਦੀ ਮੌਤ ਵੀ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਦ ਸੀਕਰੇਟ ਲਾਈਫ਼ ਆਫ਼ ਵਰਡਜ਼ ਦੇ ਲੇਖਕ ਹੈਨਰੀ ਹਿਚਿੰਗਜ਼ ਮੁਤਾਬਕ, ਅੱਜ ਤੋਂ ਪੰਜਾਹ ਸਾਲ ਬਾਅਦ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਕੇਵਲ ਤਿੰਨ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦਾ ਹੀ ਬੋਲਬਾਲਾ ਰਹਿ ਜਾਵੇਗਾ। ਇਹ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਹੋਣਗੀਆਂ; ਮੈਂਡਰਿਨ (ਚੀਨ), ਸਪੈਨਿਸ਼ ਅਤੇ ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ। ਆਪਣੇ ਧਾਰਮਿਕ ਬਲਬੂਤੇ 'ਤੇ ਅਰਬੀ ਵੀ ਬਚੀ ਰਹੇਗੀ। ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਕਹਿਣ ਮੁਤਾਬਕ ਹਿੰਦੀ, ਬੰਗਲਾ, ਉਰਦੂ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਵੀ ਬਚ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ। ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਬਚਾਅ ਕਰਨ ਲਈ ਸਿਆਸੀ ਇੱਛਾ ਸ਼ਕਤੀ, ਪੂੰਜੀ ਨਿਵੇਸ਼, ਪ੍ਰਤੀਬੱਧਤਾ ਅਤੇ ਲਗਨ ਦੀ ਲੋੜ ਹੋਵੇਗੀ। ਜੇਕਰ ਹੈਨਰੀ ਦੇ ਕਥਨ ਵੱਲ ਧਿਆਨ ਦਿੱਤਾ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਇਹ ਕਹਿਣਾ ਗ਼ਲਤ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ ਕਿ ਕਿਸੇ ਵੀ ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ ਮਰਨ ਤੋਂ ਬਚਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਬਸ਼ਰਤੇ, ਸਾਡੀਆਂ ਸਰਕਾਰਾਂ ਅਤੇ ਉਸ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਭਾਸ਼ਾਈ ਭਾਈਚਾਰਾ ਇਕਜੁੱਟ ਹੋ ਕੇ ਪਹਿਰਾ ਦੇਵੇ। ਪਰ ਕੀ ਪੰਜਾਬ ਸਰਕਾਰ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਈਚਾਰਾ ਇਹ ਵਸੀਲੇ ਜੁਟਾ ਪਾਏਗਾ? ਦੁੱਖ ਦੀ ਗੱਲ ਤਾਂ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਗਲੋਬਲੀ ਕਿਰਦਾਰ ਦੀ ਇਸ ਮੀਡੀਆ ਆਰਥਿਕਤਾ ਨੇ ਸਾਡੇ ਪੱਲੇ ਕੇਵਲ ਪ੍ਰਾਧੀਨਤਾ ਹੀ ਪਾਈ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਮੀਡੀਆ ਪ੍ਰੋਡਕਟਸ ਅਤੇ ਸਰਵਿਸਿਜ਼ ਦੇ ਕੇਵਲ ਉਪਭੋਗਤਾ ਬਣ ਕੇ ਹੀ ਰਹਿ ਗਏ ਹਾਂ। ਆਮ ਆਦਮੀ ਕੋਲ ਗਿਆਨ ਹਾਸਲ ਕਰਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਤਾਂ ਹੈ, ਪਰ ਗਿਆਨ ਪੈਦਾ ਕਰਨ ਅਤੇ ਉਸ ਦਾ ਸੰਚਾਰ/ਪਾਸਾਰ ਕਰਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਅਤੇ ਸਮਰੱਥਾ ਕੇਵਲ ਵੱਡੇ-ਵੱਡੇ ਕਾਰਪੋਰੇਟ ਅਦਾਰਿਆਂ ਕੋਲ ਹੀ ਰਹਿ ਗਈ ਹੈ। ਇਸ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾ ਰਹੇ ਵਿਕਾਸ ਮਾਡਲਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਵਿਕਾਸ ਘੱਟ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਕੁਦਰਤੀ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਵਸੀਲਿਆਂ ਨੂੰ ਖੋਰਾ ਵੱਧ ਲੱਗ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਪ੍ਰਾਈਵੇਟ ਅਖ਼ਬਾਰਾਂ ਅਤੇ ਟੈਲੀਵਿਜ਼ਨ ਦੀ ਇਸ਼ਤਿਹਾਰਾਂ ਲਈ ਵਧ ਰਹੀ ਭੁੱਖ ਨੇ ਵਧੇਰੇ ਗਾਹਕਾਂ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਵਿਚ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਕੁਰਾਹੇ ਪਾਉਣ ਦਾ ਕੰਮ ਵੀ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਹ ਸਭ ਮੀਡੀਆ ਦੇ ਫੈਲਾਅ ਅਤੇ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਅਣਚਾਹੇ ਗੱਠਜੋੜ ਦਾ ਨਤੀਜਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਪਿੱਛੇ ਮੁੜਨਾ ਮੁਮਕਿਨ ਨਹੀਂ। ਇਸ ਸਭ ਕਾਸੇ ਦਾ ਟਾਕਰਾ ਕਰਨਾ ਹੈ, ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਤਾਕਤ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਨਵੇਂ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਪਾਠਕਾਂ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣ ਲਈ ਕਰਨੀ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਸਾਡੇ ਕੋਲ ਹੋਰ ਕੋਈ ਚਾਰਾ ਵੀ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਨਾ ਅਸੀਂ ਵਿੱਦਿਆ ਦਾ ਪਾਸਾਰ ਰੋਕ ਸਕਦੇ ਹਾਂ, ਨਾ ਮੀਡੀਆ ਦਾ। ਬੱਸ ਗੇਮ ਦੇ ਰੂਲ ਬਦਲ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਜੋ ਕਿ ਬਦਲੇ ਜਾ ਵੀ ਰਹੇ ਹਨ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਅਜੋਕਾ ਮੀਡੀਆ ਦੇਸ਼ਾਂ-ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਬੈਠੇ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਨੂੰ ਇਕ-ਦੂਜੇ ਨਾਲ ਜੋੜਨ ਵਿਚ ਇਕ ਵੱਡਾ ਰੋਲ ਅਦਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਹੁਣ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਕੋਨੇ ਵਿਚ ਬੈਠੇ ਪੰਜਾਬੀ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਦਿਆਂ ਵੀਡੀਓ ਕਾਲ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੀ ਧਰਤੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਰ ਸਕਦਾ, ਸਗੋਂ ਉਸਦੀ ਮਹਿਕ ਨੂੰ ਮਹਿਸੂਸ ਵੀ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਅਨੇਕਾ ਅਜਿਹੀਆਂ ਆਨ-ਲਾਈਨ ਵੈਬਸਾਇਟਸ ਤੇ ਸੋਸ਼ਲ ਐਪਸ ਸਾਡੇ ਕੋਲ ਮੌਜੂਦ ਹਨ, ਜੋ ਨਵੇਕਲੇ ਸਾਹਿਤ, ਉੱਭਰਦੇ ਲੇਖਕ ਅਤੇ ਇੱਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਵਾਪਰਦੀ ਹਰ ਘਟਨਾ ਨੂੰ ਵਟਸਐਪ, ਫੇਸਬੁੱਕ, ਈ-ਖ਼ਬਰਾਂ ਅਤੇ ਹੋਰ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਸਾਧਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਲਗਾਤਾਰ ਸਰੋਤਿਆਂ ਸਾਹਮਣੇ ਪਰੋਸ ਰਹੇ ਹਨ। ਨਿਸ਼ਚੇ ਹੀ ਦੂਰ-ਦੁਰਾਡੇ ਇਲਾਕਿਆਂ ਵਿਚ ਬੈਠੇ ਪੰਜਾਬੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਧਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀਅਤ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ।

ਮੀਡੀਆ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ/ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਮਾਧਿਅਮ ਬਣ ਕੇ ਉਭਰਿਆ ਹੈ। ਹੁਣ ਮਸਲਾ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਦਾ ਸਾਡੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਜੀਵਨ ਉਤੇ ਕੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੈ? ਇਸ ਸਬੰਧੀ ਵਿਚਾਰ ਕਰਦਿਆਂ ਅੱਜ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਸਾਡੇ ਸਾਹਮਣੇ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਹੀ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਅਨੇਕਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਪਲੇਟ-ਫਾਰਮ ਹਨ, ਜਿਹਨਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਨਵ-ਜਨਮੇ ਬੱਚੇ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 90 ਸਾਲਾਂ ਤੱਕ ਦੇ ਬਜ਼ੁਰਗਾਂ ਵਿਚ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਿਆਰ ਤੇ ਫੈਲਾਓ ਸੰਬੰਧੀ ਗੱਲ ਕਰਨੀ ਬਹੁਤ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੈ। ਹੁਣ ਜੇਕਰ ਤੁਸੀਂ ਕਿਸੇ ਲਿਖਤ 'ਤੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਰਾਏ ਲੈਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹੋ ਜਾਂ ਆਪਣੇ ਵਿਚਾਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾਉਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹੋ ਤਾਂ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਸਭ ਤੋਂ ਸੌਖਾ ਅਤੇ ਸਸਤਾ ਸਾਧਨ ਹੈ। ਅਖ਼ਬਾਰ, ਰੇਡੀਓ ਅਤੇ ਟੀ. ਵੀ. ਆਦਿ 'ਤੇ ਲੇਖ ਜਾਂ ਖ਼ਬਰ ਲਗਵਾਉਣੀ, ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ, ਰਿਲੇਅ ਜਾਂ ਟੈਲੀਕਾਸਟ ਕਰਵਾਉਣੀ ਸੌਖੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ, ਪਰ ਇਸ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿੱਚ ਤੁਸੀਂ ਆਪ ਹੀ ਆਪਣੀ ਲਿਖਤ ਪੋਸਟ ਕਰਨੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡਾ ਲਾਭ ਇਹ ਵੀ ਹੈ ਕਿ ਕਈ ਵਾਰ ਬਹੁਤ ਹੀ ਚੰਗੇ ਅਤੇ ਉਸਾਰੂ ਸੁਝਾਅ ਤੇ ਵਿਚਾਰ ਤੁਹਾਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ ਤੇ ਵਿਚਾਰਨ ਲਈ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਪਹਿਲਾਂ ਇਸ ਸਾਧਨ ਨੂੰ ਸਿਰਫ ਦਿਲਪਰਚਾਵੇ ਦਾ ਸਾਧਨ ਹੀ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਇਹ ਵੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ ਕਿ ਇਸ ਸਾਧਨ ਰਾਹੀਂ ਮੁੰਡੇ-ਕੁੜੀਆਂ ਗ਼ਲਤ ਰਾਹੇ ਵੀ ਪੈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਭਾਵੇਂ ਇਸ ਇਲਜ਼ਾਮ ਤੋਂ ਮੁਨਕਰ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ, ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਕੁਝ ਸੰਜੀਦਾ ਤੇ ਸਿਆਣੇ ਵਿਅਕਤੀ ਇਸ ਸਾਧਨ ਨੂੰ ਸਿੱਖਿਆ ਦਾ ਸਾਧਨ ਵੀ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਰਾਹੀਂ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਬੈਠੇ ਲਿਖਾਰੀ ਆਪਣੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ ਪੋਸਟ ਕਰਕੇ ਪਾਠਕਾਂ ਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਇਥੋਂ ਤੱਕ ਕਿ ਕਈ ਵਾਰ ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਮੰਨੇ-ਪ੍ਰਮੰਨੇ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੇ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸਿੱਖਿਆਦਾਇਕ ਵਿਚਾਰ ਦਿੱਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ 'ਤੇ ਆਮ ਪਾਠਕ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਤੀਕਰਮ ਵੀ ਦਿੱਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਕੀ ਵਾਪਰ ਰਿਹਾ ਹੈ

ਜਾਂ ਸਾਡੀਆਂ ਸਰਕਾਰਾਂ ਕੀ ਉਪਰਾਲੇ ਕਰ ਰਹੀਆਂ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੇ ਜਾ ਰਹੇ ਚੰਗੇ-ਮੰਦੇ ਕੰਮਾਂ ਬਾਰੇ ਆਮ ਮਨੁੱਖ ਸੋਸ਼ਲ ਮੀਡੀਆ ਰਾਹੀਂ ਅਪ-ਟੂ-ਡੇਟ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਖ਼ਾਸ ਤੌਰ 'ਤੇ ਇਹਨਾਂ ਪੋਸਟਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰਨਾਂ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਾ ਕੇ ਆਪਸ ਵਿਚ ਵਿਚਾਰ-ਚਰਚਾ ਕਰਨ ਯੋਗ ਵੀ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ।

ਹੁਣ ਤਾਂ ਵਪਾਰਕ ਅਦਾਰੇ ਵੀ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਇਸ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਨ ਲੱਗ ਪਏ ਹਨ। ਕਈ ਲੋਕ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ, ਕਵਿਤਾਵਾਂ, ਲੇਖ ਆਦਿ ਵੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਈਟਾਂ 'ਤੇ ਪੋਸਟ ਕਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਕਲਾਕਾਰ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਵਰਤੋਂ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਲਾਭਾਂ ਦੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਦੁਰਵਰਤੋਂ ਵੀ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਬਹੁਤੇ ਨੌਜਵਾਨ ਮੁੰਡੇ-ਕੁੜੀਆਂ ਲਈ ਇਹ ਸਾਈਟਾਂ ਭੁਲੇਖੇ ਪਾਉਣ ਦਾ ਸਾਧਨ ਬਣ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਘਰ ਬੈਠਿਆਂ ਹੀ ਉਹ ਆਪਣੀ ਨਿਰਾਸ਼ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦੀ ਖੁਰਾਕ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਨਬਾਲਗ ਲੜਕੇ-ਲੜਕੀਆਂ ਤਾਂ ਹੁਣ ਆਪੋ ਆਪਣੇ ਮੋਬਾਈਲਾਂ 'ਤੇ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਦੀ ਸਹੂਲਤ ਦਾ ਨਾਜਾਇਜ਼ ਲਾਭ ਉਠਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਜਿੱਥੋਂ ਤੱਕ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਸੰਭਾਲ ਦੀ ਗੱਲ ਹੈ, ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਇਸ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਰਚਨਾਤਮਕ ਰੋਲ ਅਦਾ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਦੁਨੀਆ ਦੇ ਕਿਸੇ ਕੋਨੇ ਵਿਚ ਬੈਠਾ ਇਨਸਾਨ, ਪੰਜਾਬੀ ਪੜ੍ਹਨੀ ਜਾਂ ਬੋਲਣੀ ਸਿੱਖਣਾ ਚਾਹੇ ਤਾਂ ਉਹ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਜਾਂ ਵੈੱਬਸਾਈਟ ਦੇ ਸਹਾਰੇ ਸਿਖ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਅਨੇਕਾਂ ਅਜਿਹੇ ਸੌਫਟਵੇਅਰ ਆ ਗਏ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਿੱਖਣੀ ਆਸਾਨ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਸਪੈਲ ਚੈੱਕ ਤਿਆਰ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਸ਼ਬਦ-ਜੋੜਾਂ ਦੀਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਦੇ ਹੱਲ ਹੋਣ ਦੀ ਸੰਭਾਵਨਾ ਹੈ। ਹੁਣ ਅਸੀਂ ਗੁਰਮੁਖੀ ਜਾਂ ਫ਼ਾਰਸੀ ਵਿਚ ਹੀ ਨਹੀਂ, ਰੋਮਨ ਅੱਖਰਾਂ ਤੋਂ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀ ਪੜ੍ਹ ਅਤੇ ਪੜ੍ਹਾ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨੂੰ ਇਕ ਖੇਤਰੀ ਜ਼ੁਬਾਨ ਤੋਂ ਉਠਾ ਕੇ ਅੰਤਰ-ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਜ਼ੁਬਾਨ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਸੀਂ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਕੇਵਲ ਸੂਚਨਾ ਦਾ ਵਾਹਕ ਹੀ ਨਹੀਂ ਰਹਿ ਜਾਂਦਾ। ਇਸ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਪਾਠ ਖ਼ਾਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੁੱਲਾਂ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਵਿਚ ਵੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਮੀਡੀਆ ਉਹ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਵਰਤਾਰਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਮੀਡੀਆ ਟੈਕਸਟ ਦੇ ਉਤਪਾਦਕ, ਸਰੋਤੇ ਤੇ ਉਪਭੋਗੀ ਇਕ ਨਿਰੰਤਰ ਸੰਚਾਰ ਵਿਚ ਰਹਿ ਕੇ ਭਾਸ਼ਾ ਤੇ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਨ ਦਾ ਮੂਲ ਸੰਦ ਬਣ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।

ਸਾਰੀ ਚਰਚਾ ਨੂੰ ਸਮੇਟਦਿਆਂ ਅਸੀਂ ਇਕ ਗੱਲ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਯਕੀਨ ਨਾਲ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਮੀਡੀਆ ਨੇ ਸਾਡੇ ਭਵਿੱਖ ਵਿਚ ਹਜੇ ਬਹੁਤ ਅਹਿਮ ਰੋਲ ਅਦਾ ਕਰਨੇ ਹਨ। ਇਸਦੀ ਸੁਯੋਗ ਵਰਤੋਂ ਕਰ ਸਕਣ ਦੀ ਜਾਂਚ ਵੀ ਆਹਿਸਤਾ-ਆਹਿਸਤਾ ਆ ਜਾਵੇਗੀ। ਆਪ ਮੁਹਾਰੇ ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਨਾਲ ਬਹੁਤ ਵੱਡਾ ਨੁਕਸਾਨ ਹੋਣ ਦਾ ਖਦਸ਼ਾ ਵੀ ਰਹੇਗਾ। ਇਸ ਲਈ ਸਾਨੂੰ ਬਹੁਤ ਚੇਤੰਨ ਹੋ ਕੇ ਮੀਡੀਆ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਮਸਲਿਆਂ ਦਾ ਹੱਲ ਤਲਾਸ਼ਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋਵੇਗਾ। ਅਹਿਮ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇੰਟਰਨੈੱਟ ਪੱਛਮ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਇਆ ਸੀ ਤੇ ਅਸੀਂ ਹਾਲੇ ਤੱਕ ਇਸਦਾ ਅਸਰ ਹੀ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਲੋੜ ਤਾ ਹੈ ਇਸਨੂੰ ਢੁੱਕਵੇਂ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਵਰਤ ਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਤੇ ਸਾਹਿਤ ਦੀਆਂ ਜੜ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਮਜਬੂਤ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਜੋ ਇਸ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਵਿਗਿਆਨਕ ਤਕਨੀਕ ਦਾ ਪੂਰਾ ਲਾਭ ਹਾਸਲ ਹੋ ਸਕੇ। ਸਾਨੂੰ ਆਪਣੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤ ਲਈ ਇਸਦੀ ਸਹੀ ਦਿਸ਼ਾ ਨਿਰਧਾਰਤ ਕਰਨੀ ਪਵੇਗੀ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਹਰ ਵੰਗਾਰ ਦਾ ਮੁਕਾਬਲਾ ਕਰਨ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਇਸ ਲਈ ਇਹ ਗੱਲ ਦਾਅਵੇ ਨਾਲ ਕਹੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤ ਇਸ ਨਵੇਂ ਦੌਰ ਦੀ ਤਕਨੀਕ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਹੋਰ ਭਰਪੂਰ ਕਰਨਗੇ।

## ਹਵਾਲੇ


1. **ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ (ਡਾ.)**, 'ਮੀਡੀਆ: ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ', ਆਰਸੀ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼ ਦਿੱਲੀ, 2017
2. **ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ (ਡਾ.)**, 'ਮੀਡੀਆ: ਵਿਹਾਰਕ ਅਧਿਐਨ', ਆਰਸੀ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼ ਦਿੱਲੀ, 2013
3. **ਡਾ. ਰਜਿੰਦਰ ਪਾਲ ਸਿੰਘ ਬਰਾੜ**, ਗੁਮੁਖ ਸਿੰਘ, ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ ਚੀਮਾ, 'ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ, ਸਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਮੀਡੀਆ ਅੰਤਰ-ਸੰਵਾਦ', ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2011
4. **ਡਾ. ਰਜਿੰਦਰ ਪਾਲ ਸਿੰਘ ਬਰਾੜ**, ਸਤੀਸ਼ ਕੁਮਾਰ ਵਰਮਾ, 'ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਸਾਹਿਤ, ਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਅੰਤਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਸਰੋਕਾਰ', ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2012